* ओ३म् *

भीम प्रश्नोत्तरी

जिसमें

ऋषि दयानन्द के शिष्य, बाद में गुरुद्रोही पं० भीमसेन शर्मा के ३६० प्रश्नों के उत्तर

जिसमें

वैदिक सिद्धान्तों पर होने वाली अनेक शंकाओं का समाधान हो जाता है।

प्राप्तिस्थान—

गोविन्दराम हासानन्द

आर्य्य साहित्य भवन,

नई सड़क, देहली।

मूल्य ।॥)

ओ३म्

भीम प्रश्नोत्तरी

जिस में

इटावा निवासी पं० भीमसेन शर्मा

नवीन सनातनधर्मी के लिखे

आर्यमतनिराकरणप्रश्नावली के

समस्त ३९० प्रश्नों का उत्तर है

लेखक और प्रकाशक—

पं० छुट्टनलाल स्वामी-मेरठ ने

स्वर्गीय श्री स्वामी नित्यानन्द जी के स्मारकरूप से

प्रकाशित की

Printed by P. Tulsi Ram Swami

At the Swami Press Meerut.

१००० कापी] सन् १९१४ [मूल्य ॥)

धन्यवाद

अमेठी राज्य रामनगर जिला सुलतानपुर श्री राजकुमार रणवीरसिंह वर्मा और श्री राजकुमा रणञ्जयसिंह जी वर्मा ने इस पुस्तक के छपाने में आर्थि सहायता दी है इस के लिये धन्यवाद है ॥

समर्पण

स्वर्गीय श्री १०८ स्वामी नित्या सरस्वती जी महाराज को समर्पित है

निवेदक-छुट्टनलाल स्वामी

स्वामिपुस्तकालय-मेर

ओ३म्

आर्यमतप्रश्नोत्तरी

" आर्यमतनिराकरणप्रश्नावली "

इस नाम का एक पुस्तक पं० भीमसेनशर्मा जी इटावा बनाया है जिस में आर्यमत पर ३९० प्रश्न किये हैं। वही पण्डित भीमसेन जी हैं जो चौथाई शताब्दी तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के शिष्यप्रवर होने दुन्दुभि पीटते रहे और आर्यसिद्धान्त मासिक पत्र- रा पौराणिक धर्म का खण्डन करते रहे। स्वामी जी कृत यार्थप्रकाशादि पुस्तकों के छपते समय संशोधक और ाष्यादि के लेखक, संस्कृत भाष्य की भाषा करने थे। समय का फेर है, आज वही भीमसेन जी आर्य पर आक्षेप करते हैं। यदि धार्मिक वाद में भी फ़ दरोग़ी' चले तो भीमसेन जी की सारी सेना भाग । अस्तु मुझे इस से कुछ प्रयोजन नहीं, मैं तो यही त समझता हूं कि इस पुस्तक के प्रश्नों का उत्तर खदूं। पाठक स्वयं ही सत्यासत्य का निर्णय कर लेंगे॥

इस पुस्तक का नाम ऐसा अशुद्ध है कि जिस के

कारण भीमसेन जी स्वयं पछताते होंगे। आर्य नाम और
श्री रामचन्द्रादि वा व्यास वशिष्ठादि के मत का निराकरण
करने को ही प्रश्नावली लिख बैठे। विचार किया जाय
तो नाम उचित भी है क्योंकि इस में ईश्वरादि विषयों
में कोरा नास्तिकत्व भरा है। जो सच्चे आर्यसन्तान
सनातनी हैं वह ऐसे प्रश्न करना भी पाप समझते हैं।

पाठकों को भ्रम न हो अतः इस पुस्तक का सम
पाठ उद्धृत कर २ के ही मैं उत्तर लिखूंगा ॥

टाइटिल पेज में अशुद्धि (प्रथम ग्रास में मक्खी)
भी०से०जी लिखते हैं "आर्यमत-निराकरण-प्रश्नावली"
जिस में सर्वसाधारण के उपकारार्थ युक्ति प्रमाण
ईश्वरादि विषयों का वेदानुकूल सारांश
भीमसेनशर्मा ने दिखाया ॥

उत्तर—आर्यमत सदा वैदिक धर्म का बोधक
प्राचीन से प्राचीन और इस समय के लिखे
लेखों से भी आर्य नाम श्रेष्ठ भारतवासी और सत्य
वेद वेदाङ्गों के मानने वालों का ही पाया जाता
सनातनधर्म महामण्डल (रजिस्टर्ड) काशी से निग
मागम चन्द्रिका निकलती है उस में सहस्रों वार शिख

सूत्रधारी और महापुरुषों को आर्य नाम से पुकारा है। फिर न जाने इस पुस्तक में कैसे आर्य मत का निराकरण करने का साहस भी० से० जी को हो गया। दूर देखने की आवश्यकता नहीं अपने ब्राह्मणसर्वस्व पर लिखे श्लोक को ही विचारें जहां उन्हों ने प्रतिमास छापा है कि–

" आर्यम्मन्यसदार्यकार्यविरहा "

यदि " आर्यम्मन्य मत नि० प्रश्नावली " नाम भी लिख देते तब भी कुछ ठीक होता। भी०से०जी बहुत वार आर्यसमाज को " वर्त्तमान आर्यसमाज " लिख चुके हैं और लिख रहे हैं, तब उन्हें यह ज्ञान तो है कि आर्य तो सत्य वैदिकमार्गी होते हैं, तथापि इस बुरे भाव ने उन की बुद्धि नष्ट करदी तभी उन से मोटी भूल हुई। जिस का समाधान त्रिकाल में भी नहीं होगा। पाठक इस पुस्तक के सब प्रश्नों को क्रमशः पढ़ लीजिये, कहीं भी वेदानुकूल 'सारांश' का पता नहीं है। हम दावे से कहते हैं कि इस पुस्तक में महानास्तिकों और अज्ञानियों तथा कुतर्कियों के से प्रलाप प्रश्नों के अतिरिक्त कहीं भी सारांश का पता नहीं है। यदि किसी भी विषय का सारांश दिखा देवें तो हम अपने इस लेख को भस्म कर

देंगे । अन्यथा भी० से० जी इस थोथी पोथी को अग्नि समर्पण कर देवें ॥

भीमसेन जी प्रस्ताव में लिखते हैं—

यह पुस्तक अभी संक्षेप में तथा जल्दी में लिखा गया है । इस का असली अभिप्राय यह है कि संक्षेप से सनातनधर्मी लोगों को ज्ञात होजावे कि सनातनधर्म के वेदानुकूल मन्तव्य अत्यन्त पुष्ट तथा सर्वथा अखण्ड-नीय हैं । ये सिद्धान्त किसी भी प्रकार के कुतर्कों से कटने वाले नहीं हैं। इन पर आर्यसमाजादि लोग जो कुछ प्रहार करते वा खण्डन करते हैं वह उन की भूल है । अनेक नम्बरों की प्रश्नावली आर्यसमाजियों से पूछी जायं तो कुछ उत्तर उन से नहीं बनेगा। जैसे बालू की भीत धोखे की टट्टी बहुत दिन तक खड़ी नही रह सकती । वैसे ही ईश्वरादि वेदोक्त विषयों में आर्यस-माजियों की धींगा धींगी अब बहुत दिन नहीं चल स-कती । आर्यसमाजियों का मत भी मिथ्या होने से अब बहुत दिनों तक संसार को धोखा नहीं दे सकता है । इस लिये आ० समाजियों को भी अब सचेत होकर

ऐसा मार्ग पकड़ना चाहिये कि जिस पर चलने से सुख प्राप्ति की आशा हो ॥

इस प्रश्नावली में अभी अनेक विषय छोड़ दिये गये हैं तथा जिन विषयों में प्रश्न उठाये गये हैं उन में भी हद्द नहीं की गयी है। इस लिये ग्राहकों ने यदि इस पुस्तक का विशेष आदर किया तो सम्भव है कि १००० प्रश्न इस में आगे मुद्रित कराये जावें। सो यह बात ग्राहकों की रुचि पर निर्भर है। अभी यह पुस्तक शीघ्रता में छपा है इस से इस में कुछ भूल वा अशुद्धि वा कुछ त्रुटि जान पड़ें तो पाठक लोग हमें उस को सूचना देवें ॥ ह० भो० श० इटावा ॥

उत्तर—इस में सन्देह नहीं कि पुस्तक जल्दी में लिखा गया है, सच है, तभी भारी २ अशुद्धि हुईं। यदि आप याद करते " सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम्पदम् " भाषा कवि कहते हैं " विना विचारे जो करैं ते पाछे पछतांय " और उर्दू दां कहते हैं " जल्दी काम शैतान का " यदि आप इन कहावतों या पूर्वज वाक्यों को मानते तौ ऐसी पुस्तक न रच बैठते। अब मुझे यह बतावें कि असली अभिप्राय सनातनधर्मियों

को क्या मिला और कैसे स० धर्म के मन्तव्य वेदानुकूल अत्यन्त पुष्ट होगये। अन्य विषयों को पीछे बताना, प्रथम ईश्वर विषय में ही बतावें कि क्या पुष्ट बात मिली? प्रश्नों के देखे तौ नास्तिक वाद है॥

पौराणिकधर्म के ऊपर किये हुवे शङ्कासमूह का उत्तर न देकर स्वयं प्रश्न करना भी शोभा नहीं देता है, और आर्यों के सम्मुख पौराणिकधर्म की धज्जी उड़ जाती हैं, आप यह स्वयं मानते होंगे और यहां भी लिखते हैं कि "अनेक नम्बरों की प्रश्नावली का उत्तर कुछ नहीं बनेगा" जिस से आप के हृदय में भी यह भाव पाया जाता है कि बहुत प्रश्नों का उत्तर तौ आर्य भली भांति दे देंगे, केवल २। ४ का उत्तर नहीं बनेगा तभी तौ "अनेक" शब्द का प्रयोग किया है। सो भी०से०जी को यह भी भ्रम है, आर्य सब प्रश्नों का उत्तर दे देंगे, दिया जाता है। हां आप को अपने पुस्तक लिखते समय से ही यह भय सवार था कि इस के विषय में सैकड़ों अशुद्धियें आर्यसमाजी निकालेंगे, तभी तौ आपने लिखा है कि यह पुस्तक जल्दी में लिखा गया है। अन्यथा जल्दी क्या थी? कौन मुसीबत पड़ी थी? अब

आप जल्दी न करैं, विचारपूर्वक प्रश्न करैं, आर्यसमाज उत्तर के लिये त्यार हैं। इस समस्त पुस्तक के ३९० प्रश्नों में से छांट कर ३० प्रश्न ही आप ऐसे निकाल दें कि जिन का उत्तर आर्य न दे सकें तो भी आप अर्जुन के बड़े भाई समझे जाविंगे। आर्य लोग सत्य के ग्रहण करने में सदा तत्पर हैं। इसी से मुट्ठी भर आर्य क्रोड़ों मतमतों से भयभीत न हो, उन्नति कर रहे हैं॥

भी० से० जी इटावा प्रस्ताव के दूसरे पेरे में इंट उठा कर डराते हैं कि (अनेक विषय छोड़ दिये गये हैं यदि ग्राहकों की ग्राहकी हुई तो १००० प्रश्न छापेंगे)। आप लाख प्रश्न छापें परन्तु मेरी समझ में तो स्वयं फ़ेसला करलें कि ५। ६ वर्ष इस को छपाये होगये अभी तक तो ग्राहकों ने आदर दिया नहीं। ऐसे ही १००० प्रश्न भी रद्दी में रखने पड़ैंगे। बस महाराज! देखा ग्राहकों का आदर! २२ करोड़ हिन्दू ही क्या आर्यों के विपक्षी १॥। अर्ब जन समुदाय में १००० भी इस रद्दी पोथी को आदर देने वाले न निकले, जिस से आप हज़ार प्रश्नों की पोथी बनाते छपाते। आपकी रद्दी रंगने से कुछ भी लाभ किसी को नहीं है, तभी तो ग्राहकों का अ-

भाव है। अब आप अपनी लेखनी को न घिसावें, मौन हो ईश्वरभजन करैं, इसी में आप का कल्याण है॥

मैं स्पष्ट कहता हूं कि हज़ारों सनातनी भी भीमसेन जी को बुरा इस लिये कहते हैं कि वह २५ वर्ष आर्यसमाज की सेवा करके और सनातनधर्म का खण्डन करके अब कैसे सनातनी हो गये? उन्होंने कौन से वेद् शास्त्र उस समय नहीं पढ़ेथे, अब कौन गुरु मिल गया जो अज्ञान दूर हो गया। २०। २५ वर्ष तक सनातन धर्म का खण्डन क्यों करते रहे जब कि उसे सत्य मानते थे और आर्यों को अवैदिक समझते हुवे भी उनमें क्यों रहे॥

१–ईश्वरविषय

१ प्रश्न–ईश्वर वा परमेश्वर क्या वस्तु है? उस के होने में अखण्डनीय युक्ति क्या है?

१ उत्तर–ईश्वर सूक्ष्मातिसूक्ष्म सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयालु अजन्मा निराकार निर्विकारादि लक्षणयुक्त है। संसार का नियामक कर्त्ता है। ऐसी दिव्य शक्ति के विना यह विचित्र दर्शनीय नियमबद्ध संसार उत्पन्न नहीं हो सक्ता, यही अखण्डनीय युक्ति है। यदि आप वेद शास्त्र स्मृतियों को मानते हैं

और पुराणों को भी मानते हैं तो ऐसा प्रश्न आप को नास्तिक सिद्ध करदेगा और प्रश्न हो ही नहीं सकेगा ॥

२ प्रश्न—ईश्वर को चेतन और सर्वत्र व्यापक मानते हो तो चेतन का लक्षण बताओ। उस की चेतनता में क्या प्रमाण है ? ॥

२ उत्तर—चेतन का लक्षण मुख्यतया ज्ञान है "चिती संज्ञाने" धातु से सिद्ध है। चेतन और सर्वव्यापक हुवे विना सूर्य्यादि सब लोकान्तरों का नियमित विघूर्णित होना असम्भव है। यही प्रमाण है। यदि वेद भगवान् का प्रमाण चाहें तो बहुत मिल सकेंगे, यदि वेदादि के प्रमाण नहीं मानते तो पहिले यह लिख दीजिये कि हम वेद प्रमाण नहीं मानते। फिर पुस्तक के मुख पत्र (टाइटल पेज) की स्याही आप के ... पर उड़ेगी क्योंकि आपने "वेदानुकूलत्व" की वृथा डींग मारी है ॥

३ प्रश्न—वह (ईश्वर) प्रत्यक्ष है वा परोक्ष, यदि प्रत्यक्ष कहो तो दिखाओ वह कहां है। यदि परोक्ष कहो तो (त्व· मेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि०) इस मन्त्र में उस को प्रत्यक्ष क्यों कहा है ?। अथवा यही बताओ कि ईश्वर को प्रत्यक्ष क्यों कहा ?। और प्रत्यक्ष का क्या अर्थ है ? ॥

३ उत्तर ईश्वर प्रत्यक्ष अवश्य है परन्तु ज्ञान की आंखें खुलने पर ही प्रभु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । वेद विरोधियों से वह दूर है। वेदभगवान् स्पष्ट कहते हैं (तद्दूरे तद्वन्तिके) ज्ञान के समाओं के लिये ही (त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि) आदि वाक्य हैं । चतुर वैद्य नाड़ी देख कर ज्वर को प्रत्यक्ष कहते हैं, तब क्या ज्वर कोई तीन शिर की मूर्त्ति धर उन के सामने थोड़ा ही आ जाता है? ज्ञानगम्य भी प्रत्यक्ष कहाते हैं। यही सदाकाल का सिद्धान्त है ॥

४ प्रश्न—सच्चिदानन्द के सत्-चित्-आनन्द स्वरूपों से उस का अनेक रूप होना सिद्ध क्यों नहीं हुआ । क्या तुम ईश्वर को अनेक रूप मानते हो वा एक ही रूप है॥

४ उत्तर—लक्षण के अर्थ में भी रूप या स्वरूप शब्द से व्यवहार किया जाता है । जैसे वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है (ज्वरस्य पूर्वरूपमाह) ज्वर का पूर्वरूप कहते हैं। क्षय का पूर्वरूप वर्णन किया गया है, वहां लक्षण ही बताये गये हैं, काला पीला रूप नहीं दिखाया गया । इसी प्रकार ईश्वर भी सत्-चित्-आनन्दस्वरूप कहने से लक्षण-युक्त ही ईप्सित है। यह मुहावरे हैं। ऐसे धोखों से काम

नहीं चलता है, नहीं यह कोई पाण्डित्य की बात है। आपने भी पुस्तक के ऊपर "प्रकाशित" करना लिखा है। सब पुस्तकप्रकाशक कहाते हैं, परन्तु क्या पुस्तक को अग्नि में डाला गया है या इस में प्रकाश है? यदि पुस्तकों में प्रकाश हो तो लालटैनों के स्थान में काम क्यों नहीं लाते, अपने घर में दीपक न बाल कर पुस्तकों के ही प्रकाश में काम किया करें। अथवा कोई कहे कि जब पुस्तकें प्रकाशित होती हैं तब रात्रि में पुस्तक पढने के लिये लालटैन लैम्प या दीपक की क्या आवश्यकता है? सो ठीक नहीं। महावरों के शब्दों का धात्वर्थ या यौगिकार्थ करना उचित नहीं है। ऐसे ही सच्चिदानन्दस्वरूप कहने से ईश्वर का रूप या स्वरूप सिद्ध करना भारी भूल है, क्योंकि वेदभगवान् और उपनिषद् स्पष्ट बताते हैं —

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् ॥ कठोपनि०

३ वल्ली १५ मन्त्र

वह ब्रह्म शब्द स्पर्श रूप से रहित है। इत्यादि

५ प्रश्न—यदि एक ही रूप कहो तो सच्चिदानन्दादि

कहना नहीं बनेगा। और अनेक रूप कहो तो बहुरूपिया मानना पड़ेगा, तब उस के साकार सगुणादि रूपों को मानना क्यों नहीं पड़ेगा? (इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपईयते) इत्यादि श्रुतियों से भी साफ़ २ उस का बहुरूप होना सिद्ध है॥

५ उत्तर—आप ही को शोभा देता है जो ईश्वर को बहुरूपिया कहते हैं, और " अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे " भी व्यासप्रोक्त श्लोक बताते हैं॥ "इन्द्रोमायाभि०:" मन्त्र का पता आप को ज्ञात नहीं? ज्ञात होता तो लिखते और हम अर्थ समझा देते॥

प्रश्न ६—यदि ईश्वर को सत्—नाम विद्यमान कहो तो बताओ कहां मौजूद है। उस के मौजूद होने में सुबूत क्या है?॥

६ उत्तर—इस प्रश्न को नास्तिक ही कर सकता है। मुझे आश्चर्य है कि वेदों के मानने वाले पं० भीमसेन जी भी ईश्वर को बूझते हैं कि कहां है। लीजिये देखिये वह जहां है—" ईशावास्यमिदꣳ सर्वम्० " यजुः ४०। १ तथा "तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः"। इत्यादि शतशः प्रमाण प्रस्तुत हो सक्ते हैं। वेदों के सबूत को आर्य सपूत अवश्य मानते हैं॥

७ प्रश्न—यदि चित् रूप ईश्वर सब में है तो जड़ों में चेतनता क्यों नहीं प्रतीत होती? मुर्दा शरीर चेतन क्यों नहीं होता, दीपक के होते भी अन्धकार ही रहे तो दीपक का होना कैसे सिद्ध होगा?। इस से तुम्हारे मत में ईश्वर का चिद् रूप होना खण्डित क्यों नहीं हुआ अर्थात् अवश्य खण्डित है॥

७ उत्तर—अग्नि प्रकाशरूप है परन्तु व्याप्त अग्नि काष्ठ इन्धन में भी रहता है। यावत् रगड़ से प्रकट न हो तबतक न दाहक शक्ति होती न प्रकाश रूप ही प्रकट होता है। प्रत्येक मनुष्य के देह में अग्नि रहता है परन्तु दग्ध नहीं करता ऐसे ही परमात्मा व्यापक सर्वत्र है॥

८ प्रश्न—क्या ईश्वर दुःखस्थानों में भी आनन्दस्वरूप से व्यापक है। यदि ऐसा है तो वहां २ का दुःख पीड़ा बाधा क्यों नहीं मिटती है। यदि नहीं मिटती तो उस के आनन्दस्वरूप से व्यापक होने में प्रमाण ही क्या है?। यदि कहीं ख़ास जगह वा लोक में आनन्द स्वरूप है तो सर्वव्यापक क्यों मानते हो?॥

८ उत्तर—पापों का फल ईश्वर का न्यायपूर्वक दिया हुवा दुःख होता है, यदि कोई जज पुत्रोत्सवादि

में प्रसन्न हो और वही जज किसी पापी को जेल की आज्ञा देता है तब क्या पापी का दुःख उस जज के आनन्द में बाधा डाल देगा ? कभी नहीं। ऐसे ही परमात्मा आनन्दस्वरूप है पापियों को पाप का फल देता है॥

९ प्रश्न—क्या तुम ईश्वर को सगुण निर्गुण दोनों प्रकार का मानते हो वा एक ? यदि सगुण भी मानते हो तो उस का साकार होना क्यों नहीं मानते। केवल निराकार में गुणों का समावेश किस युक्ति से करते हो। यदि उस में गुणों की योजना हो सकती है तो (यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह) इस श्रुति में मन वाणी का निषेध क्यों किया ? ॥

९ उत्तर—ईश्वर सर्वव्यापक न्यायकारी आदि गुणों से सगुण है और सत्व, रज, तम, गुणों से रहित होने से निर्गुण भी है। निराकार ही में सर्वव्यापक सर्वद्रष्टा पन आदि गुण हो सकते हैं साकार में नहीं। यतोवाचो० इत्यादि वैदिक सत्य शास्त्रों को न मानना नास्तिकता है। ईश्वर के अनन्त गुणों को सर्वथा कहने का सामर्थ्य वाणी में नहीं है। यही उस का महत्व आस्तिक आर्य सदा से मानते आये हैं। मानते हैं। मानेंगे॥

१० प्रश्न—जब निराकार में मन वाणी का पहुंचना संभव नहीं तो तुम उस का मन से ध्यान तथा वाणी से स्तुति प्रार्थना क्यों करते हो ? जब वह नहीं सुनता तो तुम्हारी स्तुति प्रार्थना अरण्यरोदन क्यों नहीं हुआ ? ।

१० उत्तर—आप जैसे सनातनधर्मी हो जांय तो या तो (यतोवाचो०) इत्यादि शास्त्रवचनों को छोड़ देवें। या स्तुति सन्ध्योपासन प्राणायामादि छोड़ बैठें । कृपा कर मूर्त्ति पूजकों से बूझना कि जब वह खाती पीती सोती जागती सुनती नहीं तो क्यों शङ्ख घण्टा बजा कर भोग लगाते हो, सुलाते हो, कहते हो—

आयताभ्यां विशालाभ्यां लोचनाभ्यां दयानिधे।
करुणापूर्णनेत्राभ्यां कुरु निद्रां जगत्पते ॥ १ ॥

अर्थात् हे जगत्पते ! दयापूर्ण आंख मीच कर सो जाइये । जब ईश्वर को सुलाते हो, दया के नेत्रों को बन्द कराते हो, फिर भला भारत की कुशल कहां । तभी तो ऐसे प्रश्न भी आप छाप रहे हैं । आप समझे हैं, ईश्वर ने नेत्र बन्द किये हैं, खूब उस की (वेदों की) आज्ञा की अवज्ञा करलें ॥

११ प्रश्न—ईश्वर के निराकार होने में कुछ भी प्रमाण नहीं है। यदि वेद का प्रमाण कहो तो दिखाओ कि वेद में ईश्वर को निराकार पद से कहां वर्णन किया है। यदि अन्य शब्दार्थों से कहो तो वेद से उस का साकार होना भी क्या स्पष्ट सिद्ध नहीं हो जाता॥

११ उत्तर—पुराणों में भी परमात्मा को निराकार लिखा है और वेद में भी बहुत प्रमाण हैं। स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में ही लिखा है। "स पर्यगाच्छुक्रम-कायमव्रण० यजुः अ० ४० " नित्य स्तुति पुराणों की में गगनसदृशम्—पाठ हैं॥

१२ प्रश्न—यदि कहो कि एक ही वस्तु परस्परविरुद्ध दो प्रकार के गुणों वाला नहीं हो सकता। वैसे ईश्वर भी साकार निराकार दोनों प्रकार का नहीं होसकेगा। तो क्या अग्नि वायु जल इत्यादि एक २ साकार निरा-कार नित्य अनित्य दो २ प्रकार के नहीं हैं ? क्या सब में व्यापक अग्नि नित्य तथा निराकार नहीं है और क्या उसी के साथ प्रज्वलित अग्नि साकार नहीं है ?। तब वैसे ही साकार निराकार दोनों प्रकार का ईश्वर क्यों नहीं हो सकता ?

१२ उत्तर—निराकार अग्नि, वायु की भी क्या मूर्त्तियां बना कर उस पर फूल जल चढ़ाने की परिपाटी पुराणों में है ? अग्नि की मूर्त्ति पर जल स्नान और वायु की मूर्त्ति पर पुष्प दीप दिखाने पर वहां क्या फल होगा ? अग्नि का प्रकट होना अवतार के समान नहीं है। अग्नि प्रकट होता है परन्तु उस में हाड मांस का देह नहीं हो जाता। ऐसे ही परमात्मा योगियों के हृदय में प्रकाशित होते हैं सही, परन्तु सीता के वियोग में रोने खोजने वाले सर्वान्तर्यामी नहीं होते ॥

प्रश्न १३—(उभयं वाएतत्प्रजापतिः—परिमितश्चापरिमितश्च०) इत्यादि शतपथ श्रुति में परिमित से साकार और अपरिमित कहने से क्या ईश्वर का निराकार हूं ना सिद्ध नहीं है ? ॥

उत्तर १३—परिमित परमेश्वर आप का होगा, वह साकार होगा, वेदों में उपनिषदों में तो ईश्वर अपरिमित है, अतः वह निराकार ही है। परिमित परमात्मा आप का अङ्गुष्ठमात्र है या कितना, बताओ तो सही।

प्रश्न १४—(शु० य० अ० क० १९ उभा हि हस्ता० मन्त्र में अब स्वा० दयानन्द ने भी दो हाथों वाला साकार

ईश्वर वेद भाष्य में मान लिया है तो तुम केवल निराकार का झगड़ा क्यों उठाते हो ? ॥

उत्तर १४–स्वामी दयानन्द ने दो हाथ का ईश्वर कहीं भी नहीं लिखा। मिथ्यावाद का ठेका क्यों लेते हो। उस में तो अध्याय मन्त्र हैं। पता ठीक देवें, पीछे स्वामीदयानन्द की भूल निकालें। पहिले अपनी भूल दूर करलें। अ० ५ मन्त्र १९ को लिखते हो जैसा कि प्रश्न सिं० ३३३ में भी लिखा है तौ उत्तर भी वहीं देखो॥

प्रश्न १५–यदि अग्नि कभी कहीं भी प्रकट न होता तो क्या अग्नि का व्यापक होना कोई मान लेता? वैसे ईश्वर भी कभी कहीं किसी आकार में प्रकट न हो सदा निराकार ही रहे तो ईश्वर के होने में प्रमाण ही क्या है ?। तब क्या नास्तिकता न आवेगी॥

उत्तर १५–आकाश कहीं भी प्रकट नहीं होता फिर भी बुद्धिमान् शास्त्रविश्वासी आकाश को मानते ही हैं। नास्तिकता यही है कि जो विना अवतार के परमात्मा को माने ही नहीं, चाहे वेद पुकारा करैं॥

प्रश्न १६–क्या निराकार ईश्वर सृष्टिरचनादि कुछ भी काम कर सकता है। यदि हां कहो तो तुम व्यापक

निराकार अग्नि से ही होम करना, भोजन पकाना तथा प्रकाशप्राप्ति क्यों नहीं कर लेते । इन कामों के लिये दियासलाई और ईंधनादिक प्राप्ति के लिये खर्च और परिश्रम क्यों करते हो ? ।

उत्तर १६—आपके ईश्वर सर्वशक्तिमान् भी सुग्रीव की सहायता व हनुमान् के खोजे विना सीता को न पा सके तभी तो आप आर्यों से अनहोने प्रश्न करते हैं । कभी गङ्गा मन्दिरों में गङ्गा की मूर्त्ति में स्नान करने की सलाह से मूर्त्ति से ही आचमन स्नान करने लगोगे तो या तो आप गङ्गा की मूर्त्ति को पेट में रख लेंगे और मूर्त्ति के भीतर तो आप इस जन्म में घुस कर स्नान नहीं कर सकेंगे ॥

प्रश्न १७—क्या इस दृष्टान्त से निराकार से कुछ काम न होना सिद्ध नहीं है । अथवा क्या तुम्हारे पास ऐसा कोई दृष्टान्त है कि जिस से निराकार से स्थूल कार्यों का होना सिद्ध हो सके ॥

१७ उत्तर- निराकार जीवात्मा सब काम कराता है साकार देह बिना निराकार जीव के मुर्दा कह कहकर भस्म करा दिया जाता है ॥

प्रश्न १८–जब तुम्हारा निराकारवाद प्रमाण और तर्कों से टुकड़े २ खण्डित हो जाता है तो साकार न मानने का हठ क्यों करते हो ॥

१८ उत्तर–निराकार के टुकड़े करने किस कारीगर से सीखे हैं ? वह कौन गुरु मिला ? स्वामी दयानन्द जी के आप शिष्य थे तब तो साकार के टुकड़े देखे होंगे। परमात्मा के टूक २ खण्डन करना हम तो महापाप समझते हैं। आप हठ से ईश्वर का खण्डन करने लगे। यह टुकड़ों की बात आप जैसे पढ़े लिखों को योग्य नहीं। टुकड़ों की बातें मूर्खों की होती हैं ॥

प्रश्न १९–क्या तुम्हारे मत में कोई ऐसा दृष्टान्त है कि जो निराकार हो वह सब दशा में निराकार ही रहे, साकार कभी भी न हो सके ॥

१९ उत्तर–आकाश है, जीवात्मा है, २ साक्षी पर सबूत काफ़ी होता है ॥

प्रश्न २०–यदि कहो कि दिग्, देश, काल, आकाश, ये सब सदा व्यापक निराकार ही रहते हैं साकार कभी नहीं होते तो यह तुम्हारी प्रत्यक्ष ही भूल है। यदि दिशा व्यापक है तो पूर्व से आये हैं, पश्चिम को जांयगे, तथा

अङ्गुली उठा के बताते हो कि इधर उत्तर इधर दक्षिण है। यह कथन व्यापक में कैसे बनेगा। जब व्यापक हैं तो उत्तर दक्षिणादि दिशा सर्वत्र हुईं, फिर इधर उत्तर इधर दक्षिण इत्यादि व्यापक तुम्हारा मिथ्या क्यों नहीं है?। और अपने व्यवहार को सत्य मानो तो दिशा को निराकार व्यापक मानना क्यों नहीं छोड़ते। यदि देश को व्यापक मानो तो किसी देश से आना और किसी में जाना यह कैसे कह सकोगे। क्या व्यापक से कहीं अलग जा सकते हो?। यदि जा सकते हो तो वह व्यापक क्यों कर हुआ। यदि काल को व्यापक मानो तो महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, चतुर्युगी, सत्ययुगादि, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, दिन, रात, प्रहर, घड़ी, मुहूर्त्त इत्यादि काल के विभाग वा खण्ड क्यों कर मान सकोगे। यदि आकाश को व्यापक निराकार मानते हो तो हमारा घर यहां तक है इत्यादि व्यवहार कैसे बन सकेगा। क्योंकि भीतों से घेरे हुए मठाकाश का ही नाम तो तुमने घर माना है। यदि खण्डित आकाश का नाम घर नहीं मानो तो तुम्हीं बताओ कि घर क्या वस्तु है। क्या मठाकाश

से भिन्न किसी को घर मानोगे ? ॥

२० उत्तर–निराकार और व्यापक तथा सर्वव्यापक एकरस व्यापक इन भेदों को भुला कर आप अनर्गल प्रश्न करते हैं। इस प्रश्न में तो आप ही निराकार व्यापक के टुकड़े खण्ड नहीं होसकने बताते हैं, फिर निराकार सर्वव्यापक के टुकड़े किन टुकड़ों को कण्ठाग्र कर लिये थे। बताओ किधर जाओगे? घटाकाश मठाकाश यह नवीन वेदान्तियों से आपने सीखा है। वास्तव में आकाश घर नहीं है। ईंट पत्थर लोहा लक्कड़ से घिरे बने घेरे को घर कहते हैं। आकाश को घर कहना आकाश पुष्प के समान है। काल दिशा देश की कल्पनामात्र है॥

२१ प्रश्न–(आकाशस्य प्रदेशः) इस वात्स्यायन भाष्य न्याय प्रमाण से क्या व्यापक आकाश का प्रदेश नाम भाग कहना बन सकता है ? ॥

२१ उत्तर–प्रदेश होते हैं। किन्तु आकाश का अवतार नहीं होता। सब सिमट कर एक देहधारी आकाश नहीं होता है ॥

२२ प्रश्न–(निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्)

इस वैशेषिक दर्शन के सूत्र से निकलना घुसना क्या आकाश का चिन्ह नहीं है ॥

२३ प्रश्न—क्या व्यापक निराकार आकाश से निकलना और उस में घुसना बन सकता है ?। और घर से निकलना और घर में घुसना दोनों सिद्ध हैं तो घर का नाम आकाश क्यों नहीं हुआ । तथा ऐसा घर व्यापक निराकार कैसे मानोगे ?

२२—२३—निराकार में निकलना घुसना समझने में आपने बड़ा बुद्धि से काम लिया । वैशेषिक ठीक कहते हैं कि जहां निकलें घुसें अवरोध न हो वहां आकाश जानो । शब्दगुणमाकाशम् उन्मीलन उत्कोचन प्रसारण संकोचनादि गुण वायु के हैं । कान्ति तेजआदि गुण अग्नि के हैं । लालामूत्रादि में जल के गुण हैं । इत्यादि गुण कथन से आकाश का चिन्ह पहिचान घुसना निकलना बताया है । दोष क्या हुआ ? घर का निराकार पना आप को खूब सूझा है । क्या घर कोई ठोस ऐसा हो जैसी मन्दिरों में ठोस मूर्ति " नर्मदेश्वर " उस में से भी निकलना घुसना हो सकेगा ? घर के घेरे में आकाश है उस में ही से निकल बड़ सकते हैं ॥

२४ प्रश्न—जब दिशादि सब का साकार होना भी सिद्ध है तो ईश्वर के केवल निराकार होने में कौन सा दृष्टान्त बाकी रहा ॥

२४ उत्तर—दिशादि का साकार होना आपका मनोमोदक है जो शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है ॥

२५ प्रश्न—(स वै शरीरी प्रथमः) (तस्य पृथिवी शरीरम्) इत्यादि श्रुतियों में तथा (सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्) (असंख्यामूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः) इत्यादि स्मृतियों में ईश्वर को शरीर वाला कहा है तो तुम किस प्रमाण से उस ईश्वर को शरीररहित मानते कहते हो । क्या इन प्रमाणों से ईश्वर का शरीर सिद्ध नहीं है ? क्या निराकार का शरीर हो सकता है ? ।

२६ प्रश्न—यदि कहो कि (स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण०) इस वेद मन्त्र मेंकाय नाम शरीर का निषेध होने से हम उसे शरीररहित मानते हैं तो बताओ कि जब शरीर नहीं तब उस में नाड़ी नसों का होना क्यों कर सम्भव था । जब बन्ध्या के पुत्र ही नहीं तो उस के गोरे काले होने की शङ्का कैसे होगी ? ।

२५ । २६ उत्तर—पता देते तो अधिक लिखता कि क्या

प्रकरण है परन्तु रथी कहने से रथ किसी का शरीर नहीं हो जाता। शरीरी कहने से भी परमात्मा शरीर धारी नहीं। शरीर नाम प्रकृति का है। देखो मनु के प्राचीन टीके। तस्य पृथिवी शरीरम् कहने से वह साकार हो सकता है? यह सब अलंकार है। कहीं उस विराट् के ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा, शूद्र चरण बताये हैं, कहीं चन्द्रमा सूर्य नेत्र दिशा कान का अलंकार है। जैसे सेना की उपमा नदी से देते हैं तब शल्यग्राहवती० इत्यादि से कौरव सेना के नाके शल्य राजा को बताया है। क्या शल्य ना का था? मनु में भी सृष्टि का आरम्भ वर्णित है। वहां समस्त प्रकृति को शरीर बताया है जो अलंकार ही है॥

असंख्या मूर्त्तयस्तस्य, इत्यादि से क्या ईश्वर को आप टाइप फौंडरी के समान मूर्त्तियों की फौंडरी सिद्ध करते हैं? सो नहीं हो सक्ता। सब जानते हैं कि जयपुरादि में मूर्त्तियों को कारीगर बनाते हैं। कहीं भी मूर्त्तिफौंडरी नहीं बनी हुई है। वेद के प्रकाश के सामने सब दीपक फीके हो जाते हैं। जब वेद में ही

यजुर्वेद अ० ४०—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्

में अकाय परमात्मा का व्याख्यान है। स्पष्ट है कि काय नहीं अकाय, व्रणरहित अव्रण, नस नाड़ी नहीं अतः अस्नाविर है। अब इस से अधिक क्या प्रमाण होगा। यही सर्वोपरि है। ठीक है, जब वन्ध्यापुत्र ही नहीं,फिर काला गोरा क्या,जब काय ही नहीं, जब नस नाड़ी ही नहीं,तब साकार कैसा। यथा कोई अपुत्र भी अपने कुटुम्बी लोगों के पुत्रों को पुत्र कहते हैं,यही हमारे पुत्र हैं तब ऐसे ही कहीं पुत्रभूमि को कहीं मनुष्यसमाज को शरीर की उपमा देते हैं। वास्तव में जिस का कुटुम्ब से मोह छूट जाता है, सब को एक समान समझता है तभी "वसुधैव कुटुंबकम्" कहता है और सब संसार के पुत्र उसी के पुत्र होते हैं। वास्तव में कोई भी पुत्र नहीं होता। ऐसे ही सभी शरीर देह परमात्मा के हैं, कोई एक नहीं। बस अवतारवाद सिद्ध नहीं होता। क्या किसी परोपकारी समदर्शी साधु (जो सब को ही पुत्र समान देखता हो) के परोपकारार्थ समस्त पब्लिक के लिये दिये धन को एक पुरुष पुत्र बन कर ले सक्ता है ?। प्रमाण में कहे कि जब सारा संसार ही उन का

पुत्र है तो मैं भी पुत्र हूं; अतः मैं ही उत्तराधिकारी हूं मुझे ही सब धन मिले। ऐसे को सब कोई अन्यायी कहेगा। ऐसे ही समस्त सृष्टि जिस का देह है, संसार मात्र पुत्र है, उस विभु सर्वव्यापक प्रभु का एक अवतार या मूर्ति बताना अन्याय है॥

२७ प्रश्न—इस से काय शुभाशुभ कर्मों से संचित शरीर ईश्वर का नहीं होता, काय शब्द चिञ् चयने धातु से बना है; किन्तु ईश्वर का दिव्य अलौकिक शरीर होता है, उस में नाड़ी नसों के बन्धन भी नहीं होते। ऐसी व्यवस्था तुम क्यों नहीं मान लेते हो जिस में श्रुतिस्मृतियों की संगति लग जाती है॥

२७ उत्तर—नस नाड़ी के बन्धनरहित देह को आप ईश्वरदेह मानें तो संदेह है कि राम कृष्णादि को आप ईश्वरावतार कैसे मानते हैं? कृपा कर नस नाड़ी के बन्धन से रहित देह बता कर संदेह मिटालें। हां कल्पनामात्र ब्राह्मणोस्य मुखमा० इत्यादि वेदमन्त्रों से या 'तस्य पृथिवी शरीरम्' इत्यादि अलंकार देह मानो तो मानिये, इसी में नस नाड़ी का बन्धन नहीं है। फिर आर्यसमाज पर शङ्का क्यों करते हो? सनातनियों

से कीजिये ॥

२८ प्रश्न—क्या वेद में स्वयम्भूः पद से स्वयं प्रकट होना ईश्वर का सिद्ध नहीं है। यदि है तो वैसा तुम क्यों नहीं मान लेते ?

२८ उत्तर—आर्यसमाज वेदानुसार स्वयंभू परमात्मा को कहता है और सनातनी नामधारी पौराणिक देवकी-पुत्र दशरथपुत्र बताते हैं। यही तो विरोध है जिस को वेदों से विरुद्धता है ॥

२९ प्रश्न-'स एव जातः स जनिष्यमाणः' इत्यादि वेद-मन्त्रों से सिद्ध है कि वही ईश्वर प्रकट हुवा और वही प्रकट होगा। तब तुम लोग उस के प्रकट होने में हुज्जत क्यों करते हो ? ॥

३० प्रश्न—'प्रादुरासीत्तमोनुदः' मनु जी के इस कथन से भी जब परमेश्वर का प्रकट होना सिद्ध है तब तुम उस को साकार न मानने का मिथ्या हठ क्यों करते हो ?

२९-३० उत्तर—"स एव जातः स जनिष्यमाणः" यहां यही अर्थ है कि वही था वही होगा। प्रादुरासी० इस का भी अर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का सर्गारम्भ विधान है, कोई मूर्ति या अवतार का नाम नहीं है ॥

३१ प्रश्न—आविर्भाव, प्रादुर्भाव, जायमान, जनिष्यमाण, प्रकट होना, क्या इत्यादि पदों का अर्थ कभी निराकार में कोई घटा सकता है। जब निराकार में इन्द्रियों की तथा मन की पहुंच ही नहीं होती तो प्रकट होना कैसे मान लोगे। जब ऊपर लिखे विचारानुसार परमेश्वर का साकार होना सिद्ध है तो तुम वैसा सत्यांश क्यों नहीं मानते ? ॥

३१ उत्तर-आविर्भाव, प्रादुर्भाव, जायमान, जनिष्यमाण, प्रकट होना निराकार में भी होता है। जैसे ज्वर का प्रादुर्भाव आदि। कोई व्याख्याता कहते हैं—समय बंध गया। आकाश को जीव को प्रत्यक्ष कर दिया। ऐसी युक्ति दी। अमुक का पाप उस के मुंह पर प्रत्यक्ष वर्ष रहा था। इत्यादि महावरे होते ही हैं। इस से ईश्वर की साकारता सिद्ध नहीं होती। इन सब वेद स्मृतियों की सङ्गति भास्करप्रकाश में विस्तार से छपी है। यहां विस्तारभय से नहीं लिखते, वहीं देखलें ॥

३२ प्रश्न-यदि कहो कि दिग्, देश, काल, आकाश वास्तव में व्यापक निराकार हैं और कार्यसिद्धि मात्र के लिये उन में साकार की कल्पनामात्र की जाती है।

और कल्पना नाम मिथ्या का है। तब साकार होना कल्पित नाम मिथ्या ठहरा। तब वैसे ईश्वर में भी साकार की कल्पना मिथ्या सिद्ध होने से परमेश्वर को निराकार मानना सत्य सिद्ध होगया। सो क्या ऐसा सिद्धान्त तुम लोग ठीक मान लोगे। यदि मानलो और अपना सिद्धान्त ऐसा प्रकट करो तो वेद में कल्पित काल विभागादि होने के तुल्य ईश्वर के साकार होने के प्रमाण भी वेद में मानने पड़ेंगे॥

३२ उत्तर—साकारत्वाभास यदि कहीं वेद में पावे तो अवश्य कल्पित ही है॥

३३ प्रश्न—जब अग्नि आदि सभी व्यापक निराकार कार्य सिद्धि के लिये ही साकार होते हैं, तो वैसे ही उत्पत्ति स्थितिप्रलयादि कार्यसिद्धि के लिये ही परमेश्वर का साकाररूप होना श्रुति स्मृति पुराणादि से वा युक्ति से सिद्ध सभी आस्तिक विद्वान् लोग सदा से मानते हैं और जिस कल्पना से कार्यसिद्धि हुई वह स्वांश में चरितार्थ होने से सार्थक कल्पना है, निरर्थक नहीं है। वेद में कल्पित असत् के वाचक पदों से भी जिस में कल्पना हुई, उसी सद्वस्तु का बोध कराया जाता है

इस से वेद सदा ही सत्प्रतिपादक माना जाता है। सारांश यह निकला कि उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि सम्बन्धी कोई भी काम निराकार से कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि जैसे निराकार व्यापक अग्नि से भोजन पकानादि नहीं हो सकता। इसी लिये परमेश्वर का साकार होना श्रुति स्मृति पुराणादि के प्रमाणों से तथा युक्तियों से सिद्ध है॥

३३ उत्तर—सृष्टि प्रलयादि सब निराकार ही परमात्मा करते हैं, साकार कुछ नहीं। आप तो बलि से भिक्षा मांगने के काम को भी अवतार द्वारा छल कपट के कार्य का समर्थन करते हैं। निराकार परमात्मा सूर्यादि में व्याप्त हो उत्पत्ति विनाश सब कुछ कर सकता है॥

इति-ईश्वरविषयः

जीवविषय

३४ प्रश्न—हे आर्यसमाजी! आपके मत में जीव क्या वस्तु है अर्थात् चेतन है वा जड़ है? यदि जड़ कहो तो इच्छा द्वेष सुख दुःखादि जड़ में नहीं हो सकते।

यदि चेतन कहो तो वह चेतनता ईश्वर से विलक्षण कैसे है ? ॥

३५ प्रश्न--क्या मट्टी जलादि के समान जीव, ईश्वर में भेद है ? यदि ऐसा मानो तौ दोनों का चेतन होना कैसे सिद्ध करोगे ? यदि वापी,कूप,तालाब, नदी, समुद्र का सा भेद मानो तौ जल में रस तथा वर्णादि का भेद औपाधिक मानना पड़ेगा, जलत्व सामान्यांश में वापी आदि का सब जल एक ही है । वैसे चेतनत्व सामान्यांश में जीवेश्वर का भी अभेद क्या मानोगे ? ।

३४ । ३५ उत्तर--हे अनार्य जी ! हमारे वैदिकसिद्धान्त से जीव चेतन है, परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ सदानन्द है, जीव अल्पज्ञ दुःखादि से युक्त है, यही ईश्वर से विलक्षणता है । ईश्वर सर्वदा एकरस रहता है, जीव क्रोध लोभादिवश कभी आर्य, कभी अनार्य हो रङ्ग बदलता है; क्योंकि वह अल्पज्ञ है ॥

३६ प्रश्न--जब जड़, चेतन दो ही मुख्य भेद हैं तौ जैसे जडत्व सामान्यांश सब जड़ों में एकसा रहेगा वैसे ही चेतनत्व सामान्य भी अभिन्न क्या नहीं मानोगे, और कैसे नहीं मानोगे ? ॥

३६ उत्तर-चेतनत्व सामान्य भी एकसा नहीं होता है। जैसे जड़त्व पांचों तत्वों में सामान्य है, परन्तु उन सब में भी गुण पृथक् २ हैं। आप और आप के पुत्र में एकत्व बहुत हैं। यथा-विप्रत्व, सनाढ्यत्व, कृष्णत्व, संस्कृतज्ञत्व, यन्त्राध्यक्षत्व परन्तु वृद्धत्व विशेषज्ञत्वादि में आप में और उस में भेद है, कार्यों में भेद है। "आत्मा वै जायते पुत्रः" इत्यादि श्रुति और "यस्यां जातः स एव सः" के अनुसार चाहे अभेद भी वर्णन किया गया है, तथापि तत्त्वदृष्ट्या बहुत बड़ा भेद है। जैसे आप और ब्रह्मदेव में सब कोई भेद मानते हैं, अथवा स्त्री पुरुषों में अर्धाङ्गभाव शास्त्रसिद्धान्त होते हुवे भी एकभाव आप जैसे नहीं मानते हैं, ऐसे ही हम भी आत्मा परमात्मा को अभिन्न नहीं मानेंगे॥

३७ प्रश्न-जड़त्व सामान्य के तुल्य जब चेतनत्व सामान्य से जीवेश्वर का वास्तविक अभेद तथा औपाधिक भेद तुम को मानने पड़ा तो तीन पदार्थों का अनादि होना मत कैसे सिद्ध होगा॥

३७ उत्तर-"अजामेकाम्०" इस प्रमाण से हमारा तीन अनादि त्रैत सिद्धान्त सिद्ध है, जिस में प्रकृति को

अजा=उत्पन्न न होने वाली बताया है। जीव को अज कर्मफलभोगी और ब्रह्म को फलभोगरहित बताया गया है। इसी में सब कुछ बता दिया गया है, यावत् इस का खण्डन न करो तब तक आगे बढ़ने की गुञ्जाइश नहीं है ॥

३८ प्रश्न—जब तुम्हारे पहिले नियम के अनुसार सब का " आदि मूल " तुमने ईश्वर को मान लिया तो तुम्हारे एक मन्तव्य से तुम्हारा तीन अनादि मानना मत क्यों नहीं कट गया ?। क्या यह वदतोव्याघात दोष नहीं है ॥

३८ उत्तर—प्रथम नियम में जो "आदि मूल" शब्द है, उस का अर्थ उपादानकारण नहीं है किन्तु व्याकरण धातुपाठ के भ्वादिगण में "मूल प्रतिष्ठायाम्" धातु है जिस से मूल शब्द बनता है। बस इस से मूल का अर्थ आधार है, जिस में जीव और प्रकृति ठहरे हैं, उस सब के आधार परमेश्वर को " आदि मूल " कहा गया है ॥

३९ प्रश्न—तुम्हारे मत में जीव का लक्षण क्या है। यदि (वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च) इस

श्रुति के अनुसार बाल के अग्रभाग के दश हज़ार टुकड़ों में एक टुकड़े की बराबर सूक्ष्म जीव होना मानो तौ बताओ कि वह परिच्छिन्न है वा अपरिच्छिन्न है॥

४० प्रश्न-यदि परिच्छिन्न मानो तौ जीव नाशवाला अनित्य ठहरेगा। क्या संसार में परिच्छिन्न सभी पदार्थ अनित्य नहीं है? यदि जीव अनित्य ठहरा तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जायगा। तब इस जन्म के किये शुभाशुभ कर्मों का फल कौन भोगेगा? तब क्या ऐसी दशा में नास्तिक वाद न आजायगा?

३९। ४० उत्तर-हां, हम वैदिकसिद्धान्ती जीव को "बालाग्र०" इसी के अनुसार परिच्छिन्न मानते हैं, परन्तु परिच्छिन्न होने पर कोई पदार्थ अनित्य ही हो यह आप की मनमानी कल्पना है, सो भी हमारे ही लिये है, पुराणों के लिये तौ ईश्वर भी परिच्छिन्न ही आप को मानना पड़ेगा क्योंकि रामचन्द्राऽवतार, परशुराम अवतार १५। ५ के हिस्सों में बांटने पड़ेंगे, तब यह सिद्धान्त कौन सी कावक में बन्द करोगे? ॥

४१ प्रश्न-यदि अपरिच्छिन्न मानो तौ प्रत्येक जीव व्यापक हुआ। तब दोनों व्यापक दोनों चेतन जीवेश्वर

में भेद कैसे सिद्ध करोगे ? तब क्या अभेद मान लोगे ?

४१ उत्तर—ऊपर उड़ ही गया ॥

४२ प्रश्न—तुम लोग जीव ईश्वर दोनों को एकसा ही नित्य मानते हो या दोनों में भिन्न २ नित्यता है ? यदि नित्यत्व में भेद कहो तो छोटी अनित्यता कभी नष्ट अवश्य होगी। क्योंकि ऐसा न हो तौ दो में एक की अनित्यता छोटी हो नहीं सकती, तब अनित्यता के न्यूनाधिक होने पर एक सापेक्ष नित्य का नाश होना क्या मानोगे ? ऐसी दशा में तीन के अनादि होने का मत क्यों नहीं कटेगा ?

४३ प्रश्न—यदि कहो कि जीव ईश्वर दोनों की नित्यता में कुछ भेद नाम न्यूनाधिक भाव नहीं है तो (नित्योनित्यानां०) इस श्रुति में जीवों से बड़ी नित्यता ईश्वर की क्यों कही, जिस को राजाओं का राजा कहा जाय उस की अपेक्षा अन्य राजाओं का राज्य बहुत छोटा ठहराता है। वैसे यहां जीवों की नित्यता क्या छोटी नहीं ठहरेगी ?

४२।४३ उत्तर—जीव ईश्वर दोनों नित्य हैं। "नित्योनि० इस मन्त्र में उस की व्यापकता दिखाई है। परन्तु क्या

आप जीव को अनित्य मानते हैं ? यदि अनित्य मानो तौ कोई प्रमाण दीजिये ॥

४४ प्रश्न—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान; ये सब जीव के साथ समवाय सम्बन्ध से रहते मानते हो वा संयोग सम्बन्ध से इच्छादि जीव के साथ रहते हैं ॥

४५ प्रश्न—यदि समवाय सम्बन्ध से जीव के साथ मानो तौ द्वेष तथा दुःख मुक्ति में भी मानने पड़ेंगे तब तुम्हारे मत में कोई भी आर्यसमाजी कभी भी दुःख से मुक्त न हो सकेगा, सदा ही दुःख भोगने पड़ेंगे ॥

४४ । ४५ उत्तर—इच्छा, द्वेषादि जीव में देह संयोग से हैं, बल्कि यूं कहिये कि जिस देह में जीव है या नहीं यह परीक्षा करनी हो तौ इच्छा, द्वेषादि लक्षणों से जीव का उस में होना पाया जाता है। जैसे किसी रोगी के निदान में पिपासादि लक्षणों से पित्तज्वरादि की कल्पना करते हैं। मुक्तावस्था में इच्छा, द्वेषादि कुछ नहीं रहते, परन्तु पुराणों में तौ इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख ईश्वर को भी होते हैं, फिर भी टुकड़ों २ में भेद हो जाता है। जनकयज्ञ में धनुष्भङ्ग से १५ हिस्से ईश्वर रामचन्द्र जी को तौ सुख और ५ हिस्से परशुराम जी को द्वेष,

दुःख । वहां क्या गति होगी ?

४६ प्रश्न—यदि जीव के साथ इच्छादि संयोग सम्बन्ध से मानो तौ संयोग के अभाव में तुम्हारा जीव ज्ञान शून्य जड़ क्यों नहीं हो जायगा ॥

४७ प्रश्न—जो अल्पज्ञ हो वह जीव है, ऐसा लक्षण मानो तौ योगसिद्धि प्राप्त कर लेने पर मनुष्य भी सर्वज्ञ वा त्रिकालज्ञ हो सकता है। तब क्या उस २ जीव को ईश्वर मान लोगे । और जीव के ज्ञान की सीमा कहां तक नियत करोगे ? । जहां तक जीव के ज्ञान की हद्द करोगे, क्या उस से आगे कोई कुछ न जान सके, यह सम्भव है ॥

४६ । ४७ उत्तर—आप में बुद्धि का अजीर्ण है । जीव चेतन तौ है, ज्ञान उस का अल्प है, अनन्त ज्ञान नहीं, परन्तु जब तक प्रकृति से विशेष संबन्ध रखता है, तब तक उसी के ज्ञान में रहता है, जब मुक्तावस्था में परमात्मज्ञानतत्पर तन्निष्ठ होता है तब वह विशेष ज्ञानी होता है अर्थात् जितना २ यह देहाभिमानी देहप्रिय प्रकृतिप्रिय होता है उतना ही इस का ज्ञान इधर खिंचता है । जितना परमात्मा की ओर चलता है तथा

प्रकृति से विराम करता है वितना ही ज्ञानसमुद्राद्र होता जाता है ॥

४८ प्रश्न—जीव का जन्म मरण प्रवाह अनादि अनन्त मानते हो या अनादि सान्त। यदि अनादि अनन्त कहो तो तुम्हारे मत में जीव की मुक्ति कभी नहीं हो सकेगी। और यदि अनादि सान्त कहो तो क्या वेदानुकूल मुक्ति को नित्य मान लोगे ?

४८ उत्तर—जीव का जन्म मरण प्रवाहरूप से मानते हैं। जो अनादि अनन्त है। कल्पों पर्यन्त जन्म न होने को मुक्ति कहते हैं। यदि कहो कि मुक्ति में जब कोई कर्म शेष नहीं रहा तो पुनः जन्म कैसे किस कर्मफलभोगार्थ होगा? सो तो सनातनियों के कहने योग्य बात नहीं है क्योंकि उन का ईश्वर भी विना किसी कर्मफलभोग की आवश्यकता के जन्म लेता है ॥

४९ प्रश्न—मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १३। १४ में जो महत्तत्त्व को जीव कहा है क्या तुम लोग उस को ठीक नहीं मानते। यदि नहीं मानते तो किस युक्ति प्रमाण से उस का खण्डन करते हो ? सो बताओ ॥

५० प्रश्न—क्या इस स्थूल शरीर में कर्म करने वाला

जीव को ही मानते हो वा अन्य किसी को मानते हो यदि जीव ही कर्म करने वाला है तौ मनु० अ० १२ श्लो० १२ के अनुसार भूतात्मा नाम सूक्ष्म शरीर का नाश जीव तुम्हारे मत में हुआ । सो ऐसा मानने में क्या कोई वेद का प्रमाण है ?

४९ । ५० उत्तर—मनु के श्लोकों पर, मेधातिथि, सर्वज्ञनारायण, कुल्लूक, राघवानन्द और नन्दन पांचों टीकाकारों ने इस पर अपनी २ रायें लिखी हैं, परन्तु रा० न० ने १२ पर तथा कुल्लूक ने १३ पर विस्तार से लिखा है, वहां इस का जीव से पृथक् ही अर्थ किया है । अतः हम इस प्रमाण से कहते हैं कि जीव नाम आजाने से सब एक नहीं होते । वेद में "वृषभोन भीमः" पाठ आने से आप का बोध नहीं होगा । "तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः" । वेद में आने से आप के पुत्र ब्रह्म को कोई शुक्र जल प्रजापति न मानेगा न कहेगा । "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः" इस से यहां इस जल का अप् नाम नहीं है । जैसा कि पुराणों ने विष्णु भगवान् को जल में सुला कर नाभिकमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा की नाक से

सूवर का बच्चा पैदा होना लिख दिया है। हमने यहां युक्ति प्रमाण बता दिया ॥

५१ प्रश्न—क्या मन्त्र भाग चारों संहिताओं में जीव का लक्षण वा स्वरूप नहीं लिखा है। यदि लिखा है तो वह मन्त्र दिखाओ। और नहीं लिखा तो तुम्हारा कपोलकल्पित मत कोई क्यों मानेगा ॥

५१ उत्तर—"द्वा सुपर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते" इस ऋ० में जीव का लक्षण मौजूद है। *आप इस का खण्डन करें तो सनातनधर्म का झगड़ा उठे ॥

५२ प्रश्न—जीव का ईश्वर के साथ पिता पुत्र संबन्ध तुम मानते हो वा नहीं। यदि मानते हो तो क्या ईश्वर जीव का उत्पादक है? यदि उत्पादक है तो जीव नित्य नहीं हो सकेगा ॥

५२ उत्तर—जीव ईश्वर का पिता पुत्र सम्बन्ध होने पर भी उत्पादकभाव न हो तो क्या हो? गुरु शिष्य का पिता पुत्र सम्बन्ध होने पर भी उत्पादक नहीं होता, परन्तु मनु जी स्वयं कहते हैं:-"पिता त्वाचार्य उच्यते" ॥

५३ प्रश्न—क्या तुम जीव को स्वतन्त्र मानते हो वा

ईश्वराधीन (दैवाधीन)। यदि स्वतन्त्र मानते हो तो (य कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्) इस ऋग्वेद के वागम्भृणीसूक्तस्थ मन्त्र मे वागम्भृणा देवी ने कहा है कि मैं जिस को चाहती उसी को बड़ा बनाती हूं। अर्थात् जिस को चाहती उसी को ब्रह्मा उसी को ऋषि और उसी को बुद्धिमान् बनाती हूं। इस वेद के कथन से क्या जीव का पराधीन वा दैवाधीन होना साफ़२ सिद्ध नहीं है ?

५४ प्रश्न -(सएव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य ऊर्ध्वं निनीषते। सएवाऽसाधु कर्मकारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते) वही ईश्वर वा दैव उस से अच्छा कर्म कराता है कि जिस की उन्नति करना चाहता है और वही उस से बुरा कर्म कराता है कि जिस को अधोगति में गिराना चाहता है। क्या इस श्रुति प्रमाण के अनुसार जीव का पराधीन होना सिद्ध नहीं है। तथा ऐसी दशा में तुम्हारा मत वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ?

५४ उत्तर—जीव को स्वतन्त्र मानते हैं और ईश्वराधीन भी। जैसे जेल में क़ैदी जेलर के अधीन भी है। वही दिनचर्या का सब काम कराता है। चाहे चक्की पिसवावे,

चाहे बान बटवावे। तथा चाहे दफ़्तर के काम में रक्खे, चाहे कालीन बनाने में देकर होशियार करदे, चाहे हल जुतवावे तथापि वह क़ैदी भी एक प्रकार स्वतन्त्र है। नियत काम के अतिरिक्त अधिक कार्य करे, जेलर को प्रसन्न करदे, सरकारी कर्मचारियों के कार्य में सहायता कर अन्य क़ैदियों को उद्दण्डता न करने दे, ख़ैरख़्वाही करे, चाहे वहां चोरी करे, अन्य क़ैदियों को बुरी उत्तेजना दे, दोनों प्रकार के कार्य करने में स्वतन्त्र भी है, फिर भले कामों का भला, बुरों का बुरा फल पावेगा। पुनः पुनः उस के नियत जेल में से कर्मानुसार कम क़ैद या बुरे कामों से अधिक जल, बेन आदि भी फल मिलेंगे। क्या क़ानून के अनुसार क़ैदी जेलर के अधीन होने पर भी स्वतन्त्र नहीं है, परन्तु आप ईश्वराधीन पाप, पुण्य करना मानेंगे तो जीव उस का फल क्यों भोगेगा? करावे आप, भुगावे जीव को। क्या आप का यह मत है?

५५—प्रश्न—क्या वेद को तुम निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हो वा नहीं। यदि मानते हो तो वेद मन्त्रों से जैसी २ प्रार्थना तुम करते हो तब क्या वे २ काम वैसे

ही सिद्ध हो जाते हैं। यदि काम सिद्ध नहीं होते तो वेद की प्रामाणिकता कहां रही ? यदि वेद को प्रामाणिक नहीं मानते तो वेद का नाम ले २ कर संसार को धोखा क्यों देते हो॥

५५ उत्तर—हम वेद को निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हैं, इसी लिये वैदिक कहाते हैं। आप वेदों में भी विकल्प मानते हैं, फिर भी सनातनधर्मी होने का दम भरते हैं। हां, सनातन शब्द का कदाचित् आप यह अर्थ मानते हैं कि सनातन वेदविरोधी अर्थात् दस्यु क्योंकि -"विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो०" इस मन्त्र से सदा से दो दल पाये जाते हैं। एक वैदिकार्य, दूसरे अवैदिक दस्यु। सो आज इस वेदविषयक शङ्का से ज्ञात हुआ कि आप वेदों को नहीं मानते हैं, यदि वैदिक मन्त्र द्वारा प्रार्थना करने पर कार्य सिद्ध न हो तो क्या उस का मानना छोड़ दें ? मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि परम कारुणिक परमात्मा कार्य सिद्धकर्त्ता है। हां यदि वह उस प्रार्थना की योग्यता न रखता हो तो सर्वान्तर्यामी उस की कार्य सिद्धि नहीं करते हैं। क्या सभी प्रार्थना पत्रों को हाकिम स्वीकार ही करता है ? सो नहीं,

शतशः स्वीकृत होते हैं, शतशः ख़ारिज हो जाते हैं । इस से हाकिम वा प्रार्थी या प्रार्थनापत्र देना अनुचित या अशुद्ध नहीं हो जाता है। संसार को धोखा देने वालों को परमात्मा जानता है कि यह पामर पेट में क्या भाव रखता है । यह सत्य हृदय से वैदिक है या ऊपर का ढोंग रच वैदिक बना है । कुछ दिन पीछे लोभ के लिये वैदिक आर्यधर्म का निराकरण करेगा । अतः प्रार्थना स्वीकार नहीं करता ॥

५६ प्रश्न—तुम्हारे मत में वेद का लक्षण क्या है। यदि कहो कि (अपौरुषेय वाक्यं वेदः) जो किसी पुरुष का बनाया न हो वह वेद है तो किसी स्त्री का बनाया ग्रन्थ क्या वेद हो सकता है। यदि कहो कि पुरुष नाम मनुष्य का बनाया न हो तो जब (सहस्त्र-शीर्षा०) इत्यादि वेद मन्त्रों में ईश्वर का नाम भी पुरुष तुमने माना है तब ईश्वरोक्त होने से भी पौरुषेय हो जाने पर तुम्हारा लक्षण खण्डित हो जायगा। यदि कहो कि (ज्ञानसाधनं वेदः) ज्ञान का साधन वेद है तो क्या संस्कृत के तथा अन्य भाषाओं के अनेक पुस्तकों से ज्ञान नहीं होता। तब क्या उन सब को

वेद मान लोगे ?

५७ प्रश्न—क्या तुम्हारे मत में शब्दात्मक वेद है या ज्ञानात्मक है। यदि शब्दात्मक कहो तो निराकार निर्गुण निरीह ब्रह्म से शब्दात्मक वेद की उत्पत्ति कैसे होगी ?। क्योंकि शब्द की उत्पत्ति ताल्वाद्यभिघात क्रियाजन्य है। क्या निष्क्रिय वस्तु से शब्द की उत्पत्ति को तुम न्याय वैशेषिक की दलीलों से सिद्ध कर दोगे ?॥

५८ प्रश्न—यदि ज्ञानात्मक वेद मानोगे तो किन्हीं ख़ास पुस्तकों का नाम वेद कैसे मान सकोगे। किन्तु वैसा अपेक्षित ज्ञान जिन २ पुस्तकादि में मिले वे सभी क्या वेद नहीं ठहरेंगे॥

५६, ५७, ५८ उत्तर—वेद अपौरुषेय है, ज्ञानात्मक है, सृष्टि के आरम्भ में जो ज्ञान किसी पुरुष का बतलाया नहीं किन्तु स्वतः महर्षियों के हृदय में प्रेरणाबुद्धि से (इलहाम) प्रकट हुवा हो सो वेद है। उन आदि गुरु, महर्षि अग्न्यादि के उपदेश पीछे मनुष्यों की बुद्धि से कल्पित स्वार्थादियुक्त वाक्य स्वतः प्रमाण वेद नहीं हैं। सहस्र० यहां पुरुष शब्द यौगिक है॥

५९ प्रश्न—वेद की ११३१ शाखाओं में चार ही शाखा

वेद हैं शेष ११२७ शाखा वेद नहीं, इस में ऐसी पुष्ट युक्ति वा प्रबल प्रमाण क्या है, जिस का खण्डन न हो सके। यदि कहो कि सब शाखा ऋषिप्रोक्त होने से ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं इस से वे ईश्वरप्रोक्त नहीं हो सकतीं। तब यही बताओ कि जिन चार शाखाओं को तुम वेद मानते हो उन के ईश्वरप्रोक्त होने में क्या प्रमाण है॥

५९ उत्तर-चार वेद सब ऋषि महर्षि मानते आये हैं, वाजसनेयादि संहिताओं के ही आदि मन्त्र महाभाष्य में पतञ्जलि मुनिने इन ही चारों के प्रतीक धर कर बताये हैं। इन का वेद होना आप भी स्वीकारते हैं, अतः यह तो स्वीकृत हैं ही। अब आप ११२७ शाखाओं के लिये भी ऋषि. मुनियों की साक्षी दीजिये। यह बारे सुबूत आप के ज़िम्मे हैं॥

६० प्रश्न—पाणिनीय अ० ४ । ३ । १०६ (शौनकादिभ्यश्छन्दसि) सूत्र के गणपाठ में १७ शब्द हैं। इन्हीं में वाजसनेय शब्द भी पढ़ा है। तुम जिन चार संहिताओं को वेद मानते हो उन में महर्षि वाजसनिप्रोक्त वाजसनेयी शुक्ल यजुः संहिता है। वैसे कौथुमी

शौनकी आदि ये चारों संहिता भी ऋषिप्रोक्त हैं। तब क्या इन का भी वेद मानना छोड़ दोगे ?

६० उत्तर–शौनकादि शब्द १७ गणपाठ में बताने से सब संहिता वेद नहीं हो सकतीं। यथा पं० ज्वालादत्तादि स्वामी जी के शिष्यों में आर्यसमाज परिचय में मुं० समर्थदान जी ने (आप का) पं० भीमसेन जी का नाम लिखा है और आप भी स्वयं छापते रहे हैं तो क्या आप के अब के लेख भी आर्यसमाज को वैसे ही मान्य हो सकते हैं ? कभी नहीं। अब १७ वेद साबित करना आप का काम है ॥

६१ प्रश्न–जब स्वा० द० ने अष्टाध्यायी के सूत्रों में जहां जहां छन्दसि आया वहां २ छन्दःपद से मन्त्रभाग वेद का ग्रहण किया है तो (शौनकादिभ्यश्छन्दसि) में भी तुम को छन्दःपद से वेद का ग्रहण करने ही पड़ेगा ? तब शौनकादिप्रोक्त सत्रह वेद की शाखा तुम को वेद मानने पड़ेंगी। यदि न मानोगे तो वाजसनेयी और शौनकी आदि चार शाखा का वेदत्व भी छोड़ना पड़ेगा। ऐसी दशा में या तो १७ वेद मानो या चार को भी छोड़ो। अब दोनों वा चारों ओर से गिरफ्तार होगये सो कैसे छूटोगे ?

६१ उत्तर—महामोहविद्रावण के उत्तर देते हुवे भी पं० भीमसेन जी वेदार्थ के मर्मज्ञ अपने को लिखते हुवे ४ संहिताओं को वेद, इतर का खण्डन लिख चुके हैं। या तौ अपनी उस समय की मूर्खता, धृष्टता, अज्ञानता, वेदार्थज्ञानशून्यता, लिखो, या अब के लेख को मिथ्या मानो। अब दशों दिशाओं में फसगये हो, कैसे छूटोगे?

६२ प्रश्न—क्या तुम वेद को स्वतःप्रमाण मानते हो या नहीं? यदि मानते हो तौ प्रत्यक्षानुमान के अनुकूल वेदार्थ करने का अड़ंगा क्यों लगाते हो?

६२ उत्तर—हम वेद को स्वतःप्रमाण मानते हैं और शतपथादि ऋषिप्रोक्त अर्थानुकूल अर्थ करते हैं। हां आप के सनातनी भाई ज्वालाप्रसादादि सायणाचार्यादि के भाष्यविरुद्ध अवतार सिद्ध करने को खींचतान करते हैं उस को हम अनर्थ समझते हैं, इस लिये प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी पुष्टि करते हैं॥

६३ प्रश्न—क्या प्रत्यक्षानुमान से विरुद्ध भी सीधा २ वेदार्थ मान लोगे? यदि न मानोगे तौ प्रत्यक्षानुमान के अधीन होने से वेद परतःप्रमाण क्यों नहीं हुवा? और ऐसी दशा में स्वतःप्रमाण कैसे होगा?

६३ उत्तर-हम तो वेद का सीधा ही अर्थ करते हैं, सनातनी भाई अब तिरछा अर्थ का अनर्थ करने लगे हैं यथा " न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः " इस यजुर्वेद मन्त्र में " यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः " को भुला कर नतस्य एक पद कर नमनीयस्य अर्थ कोई २ करते हैं, सीधे सच्चे अर्थ को हम स्वतः मानते हैं ॥

६४ प्रश्न-जो बात प्रत्यक्षानुमान से सिद्ध होसकती है उस के लिये वेद प्रमाण की आवश्यता ही क्या है। ऐसी दशा में शब्द प्रमाण का मानना निरर्थक क्यों नहीं है ? जब चक्षु से रूप दीख सकता है तो उसी काम के लिये अन्य इन्द्रिय का होना व्यर्थ होने के तुल्य प्रत्यक्षानुमानसिद्ध विचारों के लिये वेद का मानना निरर्थक क्यों नहीं है ?

६४ उत्तर-प्रत्यक्षानुमान से सिद्ध बात में भी वेद मन्त्रों की आवश्यकता है यथा सूर्य, चन्द्रमा, भूमि प्रत्यक्ष हैं परन्तु इन भूम्यादि के भ्रमणादि का निर्णय वेद ही के प्रमाण से होसकता है, बहुत विषय परोक्ष हैं, उन के लिये भी वेद के मानने की परमावश्यकता है ॥

६५ प्रश्न—प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायोन विद्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥ क्या इस लक्षण के अनुसार तुम वेद को मानते हो यदि मानते हो तब मनमाना वेदार्थ क्यों करते हो? ऐसा सिद्धान्त मान लो तब तो पक्के सनातनधर्मी हो जाओगे और ऐसा न मानोगे तो वेद का मानना निरर्थक क्यों नहीं होगा?॥

६५ उत्तर—हम वेद का मनमाना अर्थ नहीं करते हैं, परन्तु भीमसेन जी को ही मनमाना अर्थ करने का अभ्यास है यथा शतपथ का कर्मकाण्डी अर्थ करते समय दिन का मूल रात्रि कर दिया था॥

६६ प्रश्न—सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षमनिमित्तं० इत्यादि पूर्वमीमांसा शास्त्र १।१।४ के सूत्र से वेदोक्त धर्म ज्ञान में प्रत्यक्षानुमान के निमित्तत्व का जो खण्डन किया है क्या तुम उसे ठीक २ मानते हो। यदि मानते हो तो वेद का स्वतःप्रमाण मानना क्यों नहीं छोड़ देते। और जो उक्त मीमांसा प्रमाण को मानते हो तो वेदार्थ में प्रत्यक्षानुमान की अनुकूलता का अड़ंगा क्यों लगाते हो?॥

६६ उत्तर—आप ने पूर्वमीमांसा को समझा होता

तौ यह न लिखते कि उक्त सूत्र में अनुमान का वेदविषय में खण्डन है, क्योंकि सूत्र में प्रत्यक्ष शब्द है, अनुमान का नाम तक नहीं। सूत्र का तात्पर्य यह है कि धर्म में केवल प्रत्यक्ष से काम नहीं चल सकता, किन्तु शब्दप्रमाण (वेद) की आवश्यकता है ॥

६७ प्रश्न—न्यायदर्शन २। १। ५० सू०—आप्तोपदेश० इत्यादि न्यायसूत्र से शब्द प्रमाण विषयांश को प्रत्यक्ष अनुमान से जो पृथक् सिद्ध किया है उसे यदि वैसा हीं न मानो तौ तुम्हारा वेद मानना खण्डित होजाता है सो क्या अभी तक नहीं जान पाया है ॥

६७ उत्तर–आप्तोपदेश० न्याय २। १। ५० में प्रत्यक्षानुमान से शब्दप्रमाण को पृथक् सिद्ध करने से क्या प्रत्यक्षानुमान का खण्डन सिद्ध होगया? इसी विद्या के भरोसे आर्यसमाज से छेड़ खानी करते हो? क्या आप के पुत्र के देह को आप के देह से पृथक् सिद्ध करना, यह भी सिद्ध कर देगा कि आप पुत्र से अविरुद्ध नहीं हैं, अवश्यविरोधी हैं ॥

६८ प्रश्न-ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा न होने में जो पहिला हेतु स्वा० द० ने ऋग्वे० भूमिका में पुराण इति-

हाससंज्ञा होना दिया है सो जब अथर्व के मूल मन्त्रों में आये इतिहास पुराण शब्दों का अर्थ तुमने [ऋ० भू० वेद संज्ञा वि० प्र० में] ब्राह्मण नाम लिया तो मूल मन्त्र भाग वेद में ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम आजाने से उन का स्वतःप्रमाण वेद होना क्या सिद्ध नहीं होगया ? और जब सिद्ध होगया तो इतिहास पुराण संज्ञा होने से ब्राह्मणों के वेद न होने का लेख क्या तुम्हारे ही कहने से नहीं कटगया। और क्या यह अपने ही पग में कुल्हाड़ी मारने के तुल्य दशा नहीं है। क्या तुम लोग अपने इस वदतोव्याघात दोष को अब भी नहीं मानोगे। और यदि मानोगे तो ऋग्वे० भूमिका के पुराणेतिहास हेतु पर हरताल क्यों नहीं लगाते॥

६८ उत्तर—यदि वेद में ब्राह्मणार्थवाचक पुराण शब्द आजाने से पुराण का स्वतःप्रमाण होना सिद्ध होजावे, तब तो वेद में गौ, अश्व, ऊंट, भेड़, बकरी शब्दों के आजाने से भेड़ बकरी भी स्वतःप्रमाण होजांयगी॥

६९ प्रश्न—जब अथर्व संहिता काण्ड ११। अनु० में (पुराणं यजुषा सह) साफ़ २ लिखा है कि यजुर्वेद अपने ब्राह्मण सहित उच्छिष्ट नामक ईश्वर से प्रकट हुआ

और इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ तुम को भी मानना पड़ा तो पुराण होने से ब्राह्मण ग्रन्थ ईश्वरप्रोक्त वेद नहीं यह तुम्हारा कथन क्या मूल वेद के प्रमाण से नहीं कट गया। और कट गया तो ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद न होने का मिथ्या हट करना क्यों नहीं छोड़ देते॥

६९ उत्तर—अथर्व कां० ११ अनु० ३ में नहीं, अनु० ४ सूक्त १ में मन्त्र २४ वें का टुकड़ा है और सूक्त भर में प्रपञ्च जगत् मात्र को परमेश्वर की सृष्टि बताया है, तब ब्राह्मण वेद कैसे हो गये? यदि पुराण (ब्राह्मण) ऋगादि का भाग है तो इसी मन्त्र में (ऋचः सामानि छन्दांसि) कह कर पुनः पुराणं कहना व्यर्थ होता। इस से पाया गया कि ऋक्यजुःसामअथर्वशब्दवाच्य वेदराशि में पुराण अन्तर्भूत नहीं॥

७० प्रश्न—ऋग्वेद भूमिका में जो ब्राह्मणों के वेद न होने में दूसरा हेतु वेद का व्याख्यान होना दिया है। उस के खण्डनार्थ जब मन्त्रभाग वेद में ही मन्त्र का व्याख्यान दिखादिया गया तो जैसे व्याख्यान होने से ब्राह्मण वेद नहीं वैसे ही व्याख्यान रूप संहिता के अंश का भी वेद न होना क्या मान लोगे? यदि मान

लोगे तो प्रणव तथा गायत्री का व्याख्यान होने से सभी संहिताओं का वेद होना क्या नहीं कटेगा ॥

१० उत्तर—मूल वेदमन्त्रों में शतपथ के अनुसार प्रकरणबद्ध व्याख्यान नहीं दिखा सके। यदि दिखा सके हो तौ पता दिया होता या कहीं स्वप्न में दिखा दिया है? यह मिथ्या लेख का ठेका क्या आप ने ही लिया है? प्रणव गायत्री का व्याख्यान समस्त वेद को आप पहिले सिद्ध कीजिये तब उत्तर मिलेगा। हां, "तस्य वाचकः प्रणवः" प्रणव ईश्वर का नाम है और ईश्वर का व्याख्यान वेद हैं, ऐसा वचन आने से आप की कार्यसिद्धि न होगी क्योंकि भीमसेन जी का व्याख्यान, स्वामी दयानन्द जी का व्याख्यान, तुलसीराम स्वामी का व्याख्यान, ऐसे शब्द आने से उस उस नाम की व्याख्या थोड़ा ही कहलावेगी? किन्तु जिस विषय का व्याख्यान होगा उसी विषय का कहलावेगा, व्याख्याता के नाम से भी व्याख्यान प्रसिद्ध होते हैं। ऐसे ही ईश्वर ओ३म्=परमात्मा वेद के व्याख्याता हैं उन के व्याख्यान में भी कर्त्ता होने से प्रणव व्याख्यान आवश-कता है सो आप का मतलब न सधेगा ॥

७१ प्रश्न—वेद का व्याख्यान होने से ब्राह्मणग्रन्थों को जैसे वेद नहीं मानते हो, वैसे ही क्या अष्टाध्यायी का व्याख्यान होने से महाभाष्य को भी व्याकरण नहीं मानोगे ? यदि मानोगे तो ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानने से कैसे बच सकोगे ?

७१ उत्तर—अष्टाध्यायी का व्याख्यान होने से महाभाष्य को भी अष्टाध्यायी कोई नहीं मानता चाहे उस में भी अध्याय ८ ही हैं, इसी प्रकार वेद के व्याख्यान ब्राह्मणों को हम वेद नहीं मानते हैं। यह तो आप ही अपने पेच पर गिर पड़े। ज़रा सोच समझ कर लिखा करें, सब सनातनी भी सतवचनी चेले नहीं हैं ॥

७२ प्रश्न—यदि महाभाष्य को व्याकरण न मानो तो स्वामी दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द जी के बनाये " अष्टाध्यायीमहाभाष्येद्वे व्याकरण पुस्तके " इस प्रमाण को क्या झूंठा कहोगे ? ।

७२ उत्तर—अष्टाध्यायीमहाभाष्येद्वे व्याकरणपुस्तके। यह बहुत ठीक है, जैसे कोई कहे, " ऋग्यजुस्सामाथर्वं इति वेदचतुष्टयम् " ठीक है। आप अब ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, शतपथ, गोपथ, ऐतरेयादि पुराण गाथा

नाराशंसी, अनेक वेदपुस्तक कहते हैं। कृपया गिना तो दीजिये कि वेद के इतने पुस्तक हैं, यदि आप वेद के पुस्तकों को सब को नहीं देख सके किन्तु नाम भी सब के बताने में असमर्थ हैं तो किस को वेदानुकूल और किस को प्रतिकूल कह सकते हैं॥

९३ प्रश्न—क्या अष्टाध्यायी में "तस्यापत्यम्" इस मूल सूत्र का व्याख्यान सब अपत्याधिकार नहीं है? क्या प्रत्याहार सूत्रों का व्याख्यान सब अष्टाध्यायी नहीं है? तब यदि व्याख्यान होने मात्र से व्याकरणत्व न रहे तो अष्टाध्यायी का व्याकरण होना भी कैसे सिद्ध कर सकोगे?

९३ उत्तर—अष्टाध्यायी का व्याकरणत्व अपने व्याख्यान महाभाष्य में भी जैसे व्यवहृत है, वैसे वेद के यज्ञादिविधायक शास्त्रत्व के सामान्य से ब्राह्मण को यज्ञविषयक शास्त्रत्व रहो, परन्तु अष्टाध्यायी के पाणिनीयत्व को महाभाष्य में घटाकर पातञ्जलत्व का पाणिनीयत्व से बदलना अन्याय होगा॥

९४ प्रश्न—जिस ईश्वर को तुम वेद का कर्त्ता मानते हो वह क्या वेद का व्याख्यान नहीं कर सकता था?

यदि नहीं कहो तो ऐसा कोई पुष्ट युक्ति प्रमाण बताओ जो न कट सके। और हां कहो तो ब्राह्मणग्रन्थों को वेद क्यों नहीं मान लेते॥

७४ उत्तर-जिस ईश्वर को कच्छ, मच्छ, व्यास, वामन, बुद्ध का शरीरधारक आप मानते हैं तो क्या वह दयानन्द सरस्वती का तनु धारण नहीं कर सकता था? यदि नहीं कहो तो कोई पुष्ट प्रमाण दीजिये, जो न कट सके और हां कहो तो सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि को भी ईश्वरवचन क्यों नहीं मान लेते? और ईसा, मुहम्मद को भी ईश्वरावतार मान, इञ्जील, कुरान को भी वेदवचन मनवाने को कोई मुसलमान आदि आप से कहेगा कि क्या ईश्वर कुरान नहीं बना सकता? इसी प्रकार कोई अनार को अमरूद बतावे और कहे कि यह भी वृक्ष पर लगा है, बाग़ में लगा है। क्या अमरूद के वृक्ष को अनार के से पत्तों वाला ईश्वर नहीं बना सकता था, अनार पर अमरूद नहीं लगा सकता था? आप की दलील की बलिहारी है॥

७५ प्रश्न-यदि कहो कि ब्राह्मणग्रन्थों में मनुष्यों के इतिहास हैं, मूल वेद में नहीं तो यह तुम्हारा साध्य-

समहेत्वाभासरूप निग्रहस्थान है। क्योंकि तुम्हारे मूल वेद में भी जब अनेक इतिहास हैं, जब वामदेवादि कई ऋषियों का नाम स्वा० द० ने अपने वेदभाष्य में ही लिखा है तब तुम्हारे मूल वेद भी इतिहास होने से वेद न रहे। क्या यह अपने पग में कुल्हाड़ी मारना नहीं है? अब तुम्हारे मत में कोई भी पुस्तक वेद नहीं रहा॥

७५ उत्तर-वेद में इतिहास नहीं हैं। वामदेव शब्द आने मात्र से मनुष्यों के इतिहास नहीं माने जासक्ते "इतिहासः पुरावृत्तम्" पुराने हालात का नाम इतिहास है, शब्द मात्र आने से इतिहास नहीं होता। "वृषभोन 'भीमः," वेद में आने से सम्पादक ब्रा० सर्व० का वा स्वामी दयानन्द के शिष्य का इतिहास वेद में नहीं माना जायगा॥

७६ प्रश्न-ऋ० भूमिका में ब्राह्मणग्रन्थों के वेद न होने के लिये तीसरा हेतु "ऋषिभिरुक्तत्वात्" कहा है कि ऋषियों के कहे होने से ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं। सो क्या मन्त्र संहिता ऋषिप्रोक्त नहीं हैं? यदि नहीं कहो तो अष्टाध्यायी के शौनकादि गण में सत्रह शब्दों से वेद की सत्रह शाखाओं के नाम क्या नहीं

सिद्ध होते ? और क्या उस गण में वाजसनेय शब्द नहीं पढ़ा है ? अथवा तुम्हीं बताओ कि वाजसनेयी संहिता जो शुक्लयजुः शाखा है उस वाजसनेयी पद का अर्थ क्या है। जब कि " वाजसनेयेन प्रोक्ता " यही अर्थ करना पड़ेगा तो मन्त्रसंहिता भी ऋषिप्रोक्त होने से वेद नहीं रहीं। तब तुम्हारा वेद २ चिल्लाना झूठा हुआ क्यों नहीं है ?

७६ उत्तर—आप ने "उक्त" और "प्रोक्त" शब्दों के अर्थों में भेद नहीं समझा, यदि पाणिनि को स्वामी दयानन्दोक्त "उक्त" शब्द का अर्थ ही अपने "प्रोक्त" शब्द से अभिप्रेत होता तो पाणिनि मुनि वृथा "प्र" उपसर्ग क्यों बढ़ाते। पाणिनि मुनि को "प्रोक्त" शब्द से विवक्षा यह है कि जिस ने जिस शाखा वा संहिता का संग्रह करके पुस्तकाकार बनाया, उसी को "प्रोक्त" वह संहिता वा शाखा कहाती है, न कि उसी की रची हुई। इसलिये गणपाठोक्त सब्रह शब्दों में जितने भी शब्द हैं वे सब संहिता वा शाखाओं के संग्रहकर्त्ता ऋषियों के नाम हैं, न कि रचयिताओं के। तब वाजसनेय ने जिस संहिता का संग्रह किया वह संहिता

वाजसनेयी कहलाने लगी, परन्तु वाजसनेयी नाम मूल वेदों में कहीं नहीं आता, जैसा कि "यजुः" नाम आता है। इस से सिद्ध है कि वर्त्तमान जिस यजुःसंहिता का वाजसनेयी नाम वेदोक्त नहीं है किन्तु पीछे से प्रसिद्ध होगया है जब कि वाजसनेय ऋषि ने यजुर्वेद के मन्त्रों को पुस्तक रूप संहिता वा गुटका करके बनाया। शुक्ल और कृष्ण शब्दों का व्यवहार भी वेदविशेष के लिये साक्षात् वेदों में नहीं आया किन्तु यह व्यवहार तित्तिरि ऋषि के समय से है जब से कि वेदमन्त्रों का उगलना और थूकना घड़ा गया तब ही से शुक्ल और कृष्ण शब्द वरते जाने लगे ॥

७१ प्रश्न—जब मन्त्रसंहिताओं का ऋषिप्रोक्त होना हम महाभाष्यादि के अनेक प्रमाणों से सिद्ध करते हैं और स्वा० द० ने ब्राह्मणग्रन्थों को [ऋ० भू० में—पुराणैः प्राचीनैर्ब्रह्माद्यृषिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्थाः] ऋषिप्रोक्त लिखा तो यदि ऋषिप्रोक्त होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो वैसे ही संहिताओं का वेद होना भी क्या खण्डित नहीं होगया। और ऋषिप्रोक्त होने पर भी यदि संहिता वेद हैं तो वैसे ही ब्राह्मण भी वेद क्यों नहीं हैं ?

१७ उत्तर—यदि आप ऋषिप्रोक्त समस्त ग्रन्थों को वेद मानेंगे तौ आप ही अपने आर्यसिद्धान्तसम्पादन-काल में स्वामी दयानन्द को भी अपने क़लम से ऋषि महर्षि लिख चुके हैं तब तौ सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि सब को वेद मानना पड़ेगा। शतपथ याज्ञवल्क्य ने बनाया है जो व्यासजी का समकालीन होना महाभारत से सिद्ध है और व्यास जी भारतयुद्ध समय मौजूद थे जो इसी कलियुगारम्भ में हुये हैं, फिर शतपथादि को वेद मानना वेद को भी नवीन बताना है॥

१८ प्रश्न-ऋ० भू० में चौथा हेतु ब्राह्मणग्रन्थों के वेद न होने में स्वा० द० ने अनीश्वरोक्त होना दिया है। सो क्या तुम ऐसा कोई प्रमाण दे सकते हो कि जिस में मन्त्रसंहिता ईश्वरोक्त हों और ब्राह्मण ईश्वरोक्त न हों। यदि ऐसा प्रमाण है तो दिखाओ। यदि नहीं है तो अनीश्वरोक्त कहना झूठा क्यों नहीं है? उक्त शब्द "वच" धातु का है, इसी से वचन वाक् शब्द भी बनते हैं। वाक् नाम वाणी साकार में होती है। यदि वेद को ईश्वरोक्त कहो तो साकारोक्त मानने से कैसे बचोगे। तब

ईश्वरोक्त कहना बड़ा अज्ञान सिद्ध क्यों नहीं है ॥

७८ उत्तर—वेदों की मन्त्रसंहिता का ईश्वरोक्त होना क्या भीमसेन जी को स्वीकार नहीं है? यदि नहीं है तो स्पष्ट लिखो। रहा ब्राह्मण ग्रन्थों का अनीश्वरीय होना सो हम ७७ वें प्रश्न के उत्तर में शतपथ को याज्ञवल्क्य का बनाया बता चुके हैं। पुराणों में आकाशवाणी का होना बहुधा लिखा है। क्या आकाश को भी भी० से० जी साकार बनावेंगे? ॥

७९ प्रश्न—वेद में जज्ञिरे, अजायत, अपातक्षन्, अपाकषन्, निःश्वसितम्। इत्यादि क्रियायें पढ़ी हैं तब कहीं "उक्त" क्रिया क्यों नहीं है? और जैसे ईश्वर से मन्त्र प्रकट हुए वैसे ही [पुराणं यजुषा सह] पुराणादि पदवाच्य ब्राह्मण ग्रन्थ भी उसी ईश्वर से प्रकट होना सिद्ध हैं। तब अनीश्वरोक्तत्व हेतु मिथ्या क्यों नहीं है ॥

७९ उत्तर—प्रश्न ६९ के उत्तर में अन्तर्गत हो गया ॥

८० प्रश्न—ऋ० भू० में पांचवां हेतु "कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वात्" दिया है सो कात्यायन ऋषि ने ब्राह्मणों की वेद संज्ञा कब और

कहां लिखी है ? । [मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्] इस आपस्तम्बीय यज्ञ परिभाषासूत्र को अन्धपरम्परा से अब तक कात्यायन का प्रमाण लिखते कहते मानते रहे सो क्या यह बड़ा अज्ञान नहीं है। स्वा० द० के ऐसे लेखों से क्या यह सिद्ध नहीं है कि इन श्रौतग्रन्थों को उन ने देखा जाना नहीं था ॥

८० उत्तर–यदि कात्यायन ने ब्राह्मणों की वेदसंज्ञा नहीं लिखी तो भी स्वामी जी ही को जीत है। यदि स्वामी द० स० श्रौत ग्रन्थों को न देखते तो "मन्त्रब्रा०" इस वचन को कैसे लिखते ? हां, याददाश्त में भेद होना सम्भव है,आपस्तम्ब के स्थान में कात्यायन लिख गये हैं। वह शतशः प्रमाणों को कण्ठाग्र याद रखते थे और प्रमाण लिखाया करते थे ॥

८१ प्रश्न–क्या तुम लोग बता सकोगे कि किस २ ग्रन्थ में किस २ ऋषि ने किस प्रमाण से वेदसंज्ञा कही है और किस २ ने उस वेदसंज्ञा में ब्राह्मणग्रन्थों को स्वीकार नहीं किया ? यदि यह कथन सर्वथा मिथ्या है तो ऐसे महा मिथ्या ग्रन्थों को मानते हुवे तुम लोगों को लज्जा सङ्कोच वा शर्म क्यों नहीं आती, ग्लानि क्यों नहीं होती ?

८१ उत्तर–आप तो जिन को वेद मानते हैं, उन ११२७

पुस्तकों के नाम भी नहीं बता सकते । फिर हम से किस मुख से पूछते हो कि किस २ ग्रन्थ में मन्त्रब्राह्मण की वेदसंज्ञा नहीं मानी है ? नहीं का सबूत तो आप कैसे पूछ सकते हैं ? हां का सबूत आप दीजिये । आप तो बुद्ध को भी ईश्वर मानते हैं, उन के अनुयायियों के वचन—" त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः " को भी वेद मानोगे तब लज्जा आवेगी ॥

८२ प्रश्न—स्वा० द० के लेख से जान पड़ता है कि आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा के तुल्य अन्य ऋषियों ने केवल मन्त्रभाग की वेदसंज्ञा मानी और उस में ब्राह्मणग्रन्थों को स्वीकार नहीं किया सो तुम ऐसे प्रमाण उन उन ग्रन्थों के पते सहित बताओ और न बता सको तो स्वा०द० के मिथ्या लेख पर हरताल क्यों नहीं लगाते ?

८२ उत्तर—इस का उत्तर ऊपर आचुका है ॥

८३ प्रश्न- ऋ० भू० पु० में छठा हेतु मनुष्यबुद्धिरचित होना कहा है । सो वह मनुष्यबुद्धि क्या और कैसी है । तुम्हारे पास मनुष्यों की और ईश्वर की बुद्धि की ख़ासियत का कोई प्रमाण हो तो दिखाओ ?

८३ उत्तर—सृष्टि के आरम्भ में जो स्वतःज्ञानप्राप्त

हुवा हो वह ईश्वरीय है, जो लोभमोहादिग्रसित होने पर या मनुष्यों द्वारा पीछे हो, उस को मनुष्यबुद्धि कहते हैं। बच्चा पैदा होते ही स्तनपान करता है, वह ईश्वर-दत्त ज्ञान है, परन्तु पीछे हुक्का पीना मनुष्यबुद्धि है॥

८४ प्रश्न—क्या ब्राह्मणग्रन्थों में दर्शपौर्णमासादि यागों का सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याख्यान किया है वह सब मनुष्य-बुद्धि का ही चिन्ह है ?

८४ उत्तर—दर्श पौर्णमासादि इष्टि मनुष्यबुद्धि नहीं है, इस में आप ही प्रमाण दें। उस में कोई सूक्ष्मता मनुष्य बुद्धि से अधिक बतावें ?॥

८५ प्रश्न—स्वा० द० ने अपने यजुर्वेद भाष्य के पृ० ३८० में लिखा है कि " हे ईश्वर ! मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों," यहां मनुष्यों के तुल्य ईश्वर को भी विद्यावृद्धि करने और धर्मात्मा बनने का उद्योग दिखाया है। यदि यही वेदभाष्य सत्य माना जाय तो यही वेदाशय ईश्वरबुद्धि का लक्षण क्या मानोगे ? कि जिस में ईश्वर को भी अविद्या तथा अधर्म ने घेर लिया है। क्या यह कुरान के खुदा के सी बातें नहीं हैं ? क्या निराकार

ईश्वर स्वा०द० के साथ कभी कहीं पढ़ता पढ़ाता रहा है ?

८५ उत्तर—मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे यहां यथासंख्य को आप ने न समझा। ईश्वर उपदेष्टा गुरू है। यह न जानना तो मनुष्यबुद्धि से भी नीचे गिराता है। पुच्छ विषाण हीनों की ऐसी बुद्धि होती है ॥

८६ प्रश्न—यजुर्वे० भा० पृ० ४४५ "हे जगदीश्वर! जिस कारण आप सुख दुःख के सहन करने और कराने वाले हैं"। क्या यही वेदाशय ईश्वर बुद्धि का लक्षण है ? क्या मनुष्यों के तुल्य ईश्वर को भी सुख दुःख वास्तव में सहने पड़ते हैं ?

८८ उत्तर—वेदभाष्य की भाषा तो आप ने ही की थी, क्या उस समय आप को इतना भी बोध न हुआ था वेदभाष्य के अनुवादक वृथा बनकर धन लेते थे। आप के ईश्वर श्री रामचन्द्र जी सीता के वियोग में बहुत दुःख सह चुके हैं। संस्कृतभाष्य में "मृष्टः" का अर्थ "मर्षति मर्षयति वा" है ॥

४—धर्मशास्त्र विषयः—

८७ प्रश्न—तुम्हारे मत में स्मृति व धर्मशास्त्र कितने हैं और जो बात वेद में हो वही स्मृति में हो तो मानो,

वेद से भिन्न विचारों को वेदविरुद्ध कहो तो स्मृति पुस्तकों के मानने की क्या आवश्यकता है? जब ऐसा है तो स्मृतियों का झूठा नाम ले २ कर संसार को धोखा क्यों देते हो?

८७ उत्तर—"यत्किञ्चिन्मनुरवदत्तद् भेषजानां भेषजम्" और या"वेदबाह्यस्मृत०"इत्यादि प्रमाणों से हम मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं। मनु में भी प्रक्षिप्त भाग को हम परस्पर विरुद्ध या वेदविरुद्ध होने पर मानते हैं। वेद ने सूत्र रूप से और मनु जी ने व्याख्यान रूप से उसी धर्म को विस्तार से कहा है। आप स्वामी जी के प्रमाण दिये मनु श्लोकों में किसी को वेद विरुद्ध सिद्ध करें तो हम उस को वेदानुकूल सिद्ध करेंगे। हां, स्वार्थी जनों ने मांसभक्षणादि पाप कर्म भी धोखा देने को स्मृतियों में धरदिये हैं जो वेदविरुद्ध होने से त्याज्य हैं॥

८८ प्रश्न—"विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" क्या इस मीमांसा सूत्र के अनुसार स्मृति के वचन का श्रुति के साथ विरोध न दीखे तो तुम यह अनुमान करते हो कि इस की मूल श्रुति भी होगी कि जो सर्वज्ञ न होने से हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। यदि ऐसा

मानो तौ मनु में प्रक्षिप्त का अड़ंगा क्यों लगाते हो ?

८९ प्रश्न—क्या तुम ने जिन २ श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा माना है उन २ का मूल वेद में कहीं है ही नहीं, ऐसा पूरा २ खोज कर लिया है। यदि नहीं किया तौ सत्य बात को मिथ्या कहने से सर्वस्तेयरूप महापातक का अपराध तुम को क्यों नहीं लगेगा। सत्यवाणी को चुराने नाम मिथ्या करने वाला सब वस्तुमात्र की चोरी करने का अपराधी है॥

८८। ८९ उत्तर—यदि साक्षात् वेद विरुद्ध है, तब हमें इस अनुमान की क्या आवश्यकता है कि इस के अनुकूल भी कोई श्रुति होगी। यह तौ आप दिखाइये कि आर्यसमाज मांसविधान को प्रक्षिप्त मानता है परन्तु श्रुति अमुक स्थान में अनुकूल है॥

९० प्रश्न—एक मनुस्मृति ही प्रमाण है, अन्य स्मृतियां मान्य नहीं यह बात तुम्हारी मनगढ़न्त की नहीं तब क्या कोई प्रमाण है? यदि है तौ वह प्रमाण सब के सामने उपस्थित क्यों नहीं करते? क्या अन्य स्मृतियों की अपने अनुकूल अच्छी बातें भी नहीं मानोगे?

९० उत्तर—अन्य स्मृतियों की अच्छी बात मानेंगे।

पुराणों को भी मानलेंगे परन्तु आप यह तो बताइये कि मनु से अधिक अमुक बात अमुक स्मृति में उत्तम है आप ही कभी १८ कभी २४ कभी उन से भी अधिक स्मृति मान बैठेंगे । कृपया सब के नाम बतावें और यह भी लिखेंकि इतनी स्मृतियां हैं ॥

९१ प्रश्न—यदि अपने विचार के वा मत के अनुकूल स्मृत्यादि सब ग्रन्थों के अंशों को मान लेते हो तब क्या वेदविरोधी नास्तिक तथा ईसाई मुसलमान सभी ऐसे नहीं हैं ? अर्थात् जब अपने अनुकूल अंशों को सभी आस्तिकादि मान लेते हैं तब उन में और तुम में क्या भेद रहा ?

९१ उत्तर- हम में और ईसाई मुसल्मानादि में यह भेद रहा कि हम वेदानुकूल स्मृतियों को मानते हैं, वह वेदानुकूल होने पर भी नहीं ? हम शिखा सूत्र वर्ण आश्रम पुनर्जन्मादि को प्रधान धर्म मानते हैं वह बिलकुल नहीं । क्या कोई यह कह सकता है कि जब ईसाई मुसल्मान भी समय २ पर ख़ुदा=ईश्वर के फ़र्मान जारी होने मानते हैं । सनातनधर्मी भी, तो वह एक ही हैं । कभी नहीं ॥

९२ प्रश्न—जब अपने मत के अनुकूल ही वेद स्मृत्यादि को घसीट कर तुम ने लगाया तौ वह तुम्हारा मत ही स्वतः प्रमाण वेद हुवा और उस के अनुकूल होने से मानना वेद परतः प्रमाण हो गया ॥

९२ उत्तर—हम पुनर्जन्मादि को अपने अनुकूल वेद के मतानुसार स्वतः प्रमाण मानते हैं। बुद्धिपूर्वावाक्य० इस मुनिप्रोक्त वचनानुसार वेद को युक्ति पर जांचते हैं ॥

९३ प्रश्न—वेद से भिन्न मनुआदि के जो सैंकड़ों मन्त्र श्लोकादि सत्यार्थप्रकाश में लिखे हैं वे जिस२ वेदमन्त्र के अनुकूल जान कर लिखे गये थे वहां२ वे स्वतःप्रमाण वेद मन्त्र ही क्यों नहीं लिखे गये। यदि वेद मन्त्र नहीं मिले तौ सिद्ध हुवा कि वे सब वेदविरुद्ध लिखे गये, तब जिस में दशगुणे वेदविरुद्ध प्रमाण लिखे गये और एक गुणे वेद प्रमाण हैं तौ वह ग्रन्थ सत्य कैसे हो सकता है? इस से वह वेदविरुद्ध मिथ्यार्थप्रकाश क्यों नहीं हो गया । तब तुम ऐसे पु० को सत्यार्थप्रकाश क्यों कहते हो?

९३ उत्तर—"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः" इस के अनुसार सूत्ररूप वेद में इशारेमात्र थे। उन प्रमाणों

से आप जैसों को कैसे सन्तोष होता जो व्याख्यान देख कर भी हठ दुराग्रह करते हैं। हां सत्यार्थप्रकाश का कोई प्रमाण साक्षात् वेद के विरुद्ध दिखादो तो हम उसे सत्यार्थप्रकाश न कहैं। अन्यथा हां, हम पुराणों में नवीन बात बतादें तो क्या आप उन्हें पुराण कहना छोड़दें॥

९४ प्रश्न-क्या तुम सत्यार्थप्र० में लिखे वेद के भिन्न प्रमाणों को कभी वेदानुकूल सिद्ध कर सकते हो। यदि नहीं कर सकते और उन ग्रन्थों को निर्विकल्प प्रामाणिक भी नहीं मानते तो स० प्र० में अन्य ग्रन्थों को धोखा देने के लिये क्यों नहीं है॥

९४ उत्तर-इस का भी उत्तर ऊपर के उत्तर में आ गया है॥

९५ प्रश्न—मनुस्मृत्यादि जिन २ ग्रन्थों के जितने श्लोकादि तुम को मान्य हैं उन सब की प्रामाणिकता क्या वेद से सिद्ध कर सकते हो? यदि नहीं कर सकते तो शेष भाग को प्रक्षिप्त कहने का साहस तुम को कैसे हो गया है?॥

९६ प्रश्न—यदि कोई खण्डन करे कि जितने श्लोक तुम मनु जी के बनाये मानते हो उन में मनु का एक भी

नहीं है किसी ने बना कर मनु का नाम रख दिया है, इस से सभी मनु प्रक्षिप्त है, तब क्या तुम मनु की बनाई मनुस्मृति सिद्ध कर सकोगे ॥

९५।९६ उत्तर–हमारे प्रक्षिप्त बताये " न मांसभक्षणे दोषो० " इत्यादि श्लोकों को आप वेदानुकूल सिद्ध करें तब हम उस को प्रक्षिप्त होना सिद्ध करेंगे । प्राचीन वाल्मीकीयादि पुस्तकों में प्रक्षिप्त भाग सर्ग के सर्ग कतकादि टीकाकारों ने माने हैं जिन को तुम भी मानते हो । प्रथम उन कतकादिकों को स्वर्ग से परास्त करने की सनद ले आइये तब हम से बातें कीजिये । तब तो ९६ के प्रश्न पर स्वर्ग में आप की वही गति होगी जो त्रिशङ्कु की पुराणों में लिखी है ॥

५–इतिहास पुराण:–

९७ प्रश्न–यदि तुम्हारा मत है कि महाभारतादि इतिहास और श्रीमद्भागवतादि नाम से प्रसिद्ध पुराण गप्प हैं । अज्ञानी धूर्त्तलोगों ने कल्पना कर लिये हैं और इतिहास पुराण नामक ब्राह्मणग्रन्थ माननीय सत्य हैं । क्या यह तुम्हारा मत ठीक है ?

९७ उत्तर—धोखेबाज़ी इसी का नाम है। महाभारत को स्वामी जी ने इतिहास माना है गप्प नहीं, परन्तु उसको २४ हज़ार माना है शेष को प्रक्षिप्त। हां भागवतादि को गप्प माना है॥

९८ प्रश्न—यदि कहो कि हमारा यह मत नहीं तो स्वा० द० को क्या मिथ्यावादी कहोगे? और वैसी दशा में तुम्हारा मत क्या है सो भी बताओ? और यदि कहो कि हमारा यही मत है तो तुम्हारे गुरु० स्वा० द० ने यह भी लिखा है कि विषमिले अन्न को त्याग देने के तुल्य असत्य जिस में मिला हो ऐसे सत्य को भी त्याग देना चाहिये। इस के अनुसार महाभारतादि इतिहास और अष्टादश पुराण तुम्हारे मत में सर्वथा असत्य विष के तुल्य त्याज्य हुवे वा नहीं। ऐसी दशा में तुम पर निम्नलिखित प्रश्न खड़े होते हैं:—

९८ उत्तर—विषमिश्रित अन्न का त्याग भी स्वामी जी ने लिखा है और "विषादप्यमृतं ग्राह्यं" भी लिखा है। "विषस्य विषमौषधम्" भी नीतिकार बताते हैं। कृपया झंझरी महाभारत की नौका पर १८ पुराणों को न लादिये॥

९९ प्रश्न—इतिहास पुराणों के प्रामाणिक न होने पर व्यास जी का होना ही सिद्ध नहीं। यदि महर्षि पराशर से व्यास जी की उत्पत्ति होना सत्य मानो तो तुमने इतिहास पुराणों का प्रमाण मान लिया। और व्यास जी का होना सिद्ध नहीं तो व्यास के साथ नियोग होने आदि की व्यास सम्बन्धी सब कथायें बन्ध्यापुत्र की कथाओं के तुल्य मिथ्या क्यों नहीं हैं ?॥

९९ उत्तर- व्यास जी का जन्म महाभारत में लिखा है। अतः और व्यास सूत्रादि होने से सिद्ध है। व्यास नियोग की कथा भी भारत में हैं। हां, आप की कपोल कल्पना भारत में नहीं लिखी जो व्यास के दर्शनमात्र से पाण्डु आदि का जन्म आप ब्रा० सर्वस्व में लिख बैठे थे और नोचा देखा था। दर्शनमात्र से सन्तान होना बेशक बन्ध्या पुत्र के समान आप का मत है॥

१०० प्रश्न—पुराणों के सत्य न मानने पर शुकदेव का होना ही सिद्ध नहीं तब मुक्त हो जाने पर कथा सुनाने का आक्षेप करना विना नींव की भित्ति के तुल्य असत्य क्यों नहीं है ?॥

१०० उत्तर—व्यासपुत्र शुकदेव का होना तो भारत

से सिद्ध है परन्तु पुराणों में बेशक गप्पें हैं कि कहीं शुकदेव को सदा १६ वर्ष का रहाना स्त्री पुं भेद का न जानना भागवतादि में वर्नन है। कहीं देवी भागवत में शुकदेव को पुत्र कलत्रवान्गृहस्थ बताया गया है, कृपया आप बतावें कि इन में कौन बात सत्य है। गृहस्थ थे या विरक्त? ॥

१०१ प्रश्न—यदि कहो कि तुम पुराणों को सत्य मानने के साथ श्रीमद्भागवत का राजा परीक्षित को सुनाना मानते हो उस की असम्भवता दिखाने के लिये हमारा कथन है तो उत्तर होगा कि स० प्र० पु० के नवम समुल्लास में स्वा० द० ने (शृण्वन् श्रोत्रं भवति०) इत्यादि छान्दोग्योपनिषद् के प्रमाण पर लिखा है कि मुक्त पुरुष जिस २ इन्द्रिय से काम लेना चाहता, जो २ सङ्कल्प करता है वैसा २ सब काम सङ्कल्प सिद्ध होने से कर सकता है। तब क्या मुक्त हुए शुकदेव जी सङ्कल्प करके श्री पूर्णब्रह्मकृष्णपरमात्मा के गुणानुवाद की कथा सुनाने का सत्य सङ्कल्प नहीं कर सकते थे। जब मुक्त के लिये लिखा है कि (स एकधा भवति द्विधा भवति) वह एक वा अनेक प्रकार के सङ्कल्प सिद्ध अनेक २ रूप

धारण कर सकता है। तब शुकदेव जी का राजा परीक्षित को कथा सुनाना असंभव कैसे हो सकता है? क्या तुम को यह न सूझा कि इस को असंभव असत्य सिद्ध करना चाहते हैं तो स्वा० द० के उक्त लेख पर पहिले हरताल लगा देवें ॥

१०१ उत्तर—महाभारत में राजा परीक्षित को ७ दिन तक राजकार्य करते रहना, वैद्यों औषधों को पास रखना। एक स्तम्भ स्थान पर बैठना लिखा है फिर भागवत कहां कैसे सुनी? यह आप ही सिद्ध नहीं कर सकते हैं। आप भारत को झूंठा मानते हैं या भागवत को? ऐसी दशा में उभयतः पाश। रज्जू में फसे आप क्या यज्ञस्तम्भ में अपने को मान बैठे हैं? क्या मुक्त पुरुष गोपीजन की नृत्य कथा और अनेक मिथ्या भाषण (जो भागवत समीक्षा में मैंने लिखे हैं) करने को आया करते हैं। उन्हें क्या ब्रह्मयन्त्रालय खोलने का चाव होकर आप जैसे गुरु निन्दा के ठेकेदार हुवे हैं। ऐसे ब्रह्मादि को दोष युक्त कहने की क्या आवश्यकता थी?

१०२ प्रश्न—जब शुकदेव का मृत्यु ही नहीं हुआ किन्तु जन्ममरण के बन्धन से छूट कर सदा के लिये अमर

होगये तब मरण की कल्पना मनमानी करके आक्षेप करना क्या तुम लोगों का महा अज्ञानान्धकार नहीं ?

१०२ उत्तर—शुकदेव का मरण न हुवा था तौ शान्ति पर्व में व्यासजी ने रुदन क्यों किय। शिवने समझाया क्यों।

१०३ प्रश्न—जब इतिहास प्रामाणिक नहीं तो पांच पाण्डवों के नियोग होने की कथा, द्रौपदी के पांच पति होना, कुमारी कुन्ती के कान से कर्ण का होना, इत्यादि सत्य कैसे है ? यदि सत्य हैं तो इन अंशों में इतिहास को सत्य मान लिया, तब मिथ्या कहना लिखना ही मिथ्या क्यों नहीं हुआ ? और यदि मिथ्या कहो तो पांच पाण्डवों की उत्पत्ति आदि आकाश के फूल तोड़ने के तुल्य सर्वथा मिथ्या क्यों नहीं है ?

१०३ उत्तर—महाभारत इतिहास तौ प्रमाण है। नियोग, ५ पति तौ सिद्ध हो गये। कृपया बतावे कुन्ती के कान से कर्ण की उत्पत्ति आप ने कौन सी पुस्तक में देखी ? भारत में तौ कहीं लिखा नहीं है । आप के कान में से कोई पुस्तक निकला होगा उसी पर आकाश के पुष्प चढ़े होंगे नहीं तौ दिखाइये । जब पुराणों का बोध नहीं तौ वृथा पग क्यों अड़ाते हैं । एक वार आ॰

सर्व० में पाण्डु धृतराष्ट्र विदुर की उत्पत्ति व्यास के दर्शनमात्र से लिख कर मिथ्यावादी सिद्ध हो चुके हो। आज फिर कर्ण की कान से उत्पत्ति लिख बैठे ॥

१०४ प्रश्न– जब कि पुराण असत्य हैं तो चीरहरण गोपियों के साथ बिहार करने आदि कृष्ण भगवान् की लीलाओं पर मिथ्या आक्षेप क्यों करते हो ? क्योंकि मिथ्या होने की दशा में कृष्ण का मनुष्य होना भी सिद्ध नहीं और आक्षेप के लिये पुराण सत्य हैं तो अलिप्त सर्वव्यापी निरञ्जन परमात्मा का अवतार भी सत्य क्यों नहीं हुआ ? ॥

१०४ उत्तर–श्रीकृष्ण के अस्तित्व से नकार तो कोई आप जैसा तर्णविश्वासी करेगा। हां उन के चीर हरण गोपीगण के साथ विहारादि कर्म श्रीकृष्ण भगवान् को मिथ्या दोष आप जैसे किन्हीं गुरु निन्दकों ने लगाये हैं ॥

१०५ प्रश्न–अपने अनुकूल कल्पितमत की पुष्टि के उपयोगी पुराणों के वचनों को तुम सत्य क्यों मान लेते हो ? क्या उसी न्याय से वह ही पुराण अन्यों के लिये प्रमाण न हो सकेंगे। जैसे कोई कहे कि हमारी आंख-रूप को देख सकती है, अन्य की नहीं, वैसा ही

बेसमझों का कथन तुम आर्यसमाजियों का है ॥

१०५ उत्तर–हम पुराणों का आप के लिये प्रमाण देते हैं। जैसे मुसलमानों को क़ुरान की आयत का भी हम प्रमाण दे सकते हैं। क्या इस से सब क़ुरान को सत्य मानने का दोष कोई दे सकता है ? ॥

१०६ प्रश्न–जिस नियम वा न्याय से क्षत्रिय वर के साथ ब्राह्मणी कन्या का विवाह कर देने के लिये तुम राजा ययाति के उपाख्यान को प्रमाण मानते हो, उसी न्याय से राजा ययाति की सब कथा माननी पड़ेगी। तब क्या एक १००० वर्ष के लिये राजा का बुड्ढे से जवान होना, आकाश मार्ग से शुक्राचार्य के पास जाना, अन्य पुत्रों को शाप देना एक पुरुनामक पुत्र को वरदान देना इत्यादि सब कथायें सत्य मानोगे ? ॥

१०६ उत्तर–न हम क्षत्रिय के साथ ब्राह्मणी के विवाह को उचित समझते हैं न १००० वर्ष के लिये कोई पुनः जवान हुवा किसी को मानते हैं। हम तो "सवर्णां लक्षणान्वितां" को मानते हैं। हां, आप को कोई हक नहीं रहता। चाहे कोई ब्राह्मणी को क्षत्रिय से विवाहे १००० वर्ष को पुनः जवानी बतावे। चाहे कोई मसीह

को कब्र से उठना कहें। यदि पुराणों को मानोगे तौ सब को स्वीकार करना पड़ेगा ॥

१०७ प्रश्न—यदि असम्भव कहो तौ हम स्वर्ग लोक मृत्यु लोक के कन्या वरों का विवाह होना ही प्रथम असम्भव सिद्ध कर देंगे। अथवा जो कुछ तुम कहोगे उस सब को असम्भव सिद्ध करेंगे ॥

१०७ उत्तर—असम्भव कथाओं को आप भी मान बैठे सो ठीक है, पुराणों की कथा सब असम्भव मानने पर हम भी बधाई देते हैं परन्तु सब बातें हमारी असम्भव आप कैसे सिद्ध कर देंगे ? क्या अपने आर्यसिद्धान्त के लेखों को भी असम्भव बताने की हिम्मत है ? यदि ऐसा है तौ कभी ब्राह्मणसर्वस्व के लेखों को भी आप असम्भव बतावेंगे ॥

१०८ प्रश्न—जब कि योगदर्शन के विभूतिपाद मे कही सिद्धियों को तुम मानते हो और जिन २ पराशर व्यासादि की कथा इतिहास पुराणों में लिखी गई हैं, वे लोग प्रायः परम सिद्ध योगिराज थे। तब पुराणों की कथायें सम्भव सिद्ध क्यों नहीं हुईं। फिर ऐसी दशा

में सत्य पुराणों को मिथ्या करने का पाप अपने शिर क्यों लादते हो ?

१०८ उत्तर—योगदर्शन की सिद्धि तो हम मानलें परन्तु आप के पास क्या सबूत है कि पुराण व्यास रचित हैं ? । व्यास जी ने पुराण नहीं बनाये । यदि व्यास पुराण बनाते तौ वह अपने पिता और अपने को—

पौराणिकानां व्यभिचारदोषो नाशङ्कनीयः कृतिभिः कदाचित् । पुराणकर्त्ता व्यभिचारजातस्तस्यापि पुत्रोव्यभिचारजातः १

उक्त श्लोक बनवाने के योग्य कथा न लिखते । क्या व्यास जी आप के समान गुरू पर वृथा दोष धर सकते थे, जो सर्वथा असत्य हैं ॥

१०९ प्रश्न—क्या इतिहास पुराणों का जो पांच प्रकार का लक्षण (सर्गश्च०) इत्यादि है वह सब सत लब अष्टादश पुराण को छोड़ कर ब्राह्मणादि ग्रन्थों से सिद्ध कर दोगे ? यदि ऐसा कर सको तौ किसी उच्च वंश का पूरा २ चरित्र ब्राह्मणग्रन्थों में दिखलाओ ॥

१०९ उत्तर—पुराण के पांच लक्षण भी तो किसी

आर्ष ग्रन्थोक्त नहीं हैं । जनमेजय का इतिहास संक्षेप से हम ब्राह्मण ग्रन्थों में दिखा देंगे ॥

११० प्रश्न—क्या (यज्ञोमन्त्रब्राह्मणस्य विषयः०) मन्त्र और ब्राह्मण का विषय यज्ञ है। इस महर्षि वात्स्यायन के लेख को मानते हो, यदि मानते हो तो क्या पुराणरूप ब्राह्मण और वेद का एक ही यज्ञ विषय मानलोगे ॥

११० उत्तर—क्या दो ग्रन्थों का एक विषय होने से दोनों एक हो जांयगे ? ज़ाप्ता फ़ौजदारी और ताज़ीरातहिन्द दोनों का एक ही विषय है, क्या यह दोनों एक ही के बनाये हैं। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, सिद्धान्त कौमुदी, लघुकौमुदी, सारस्वत, चन्द्रिका सब का व्याकरण विषय है, क्या यह सब एकही के बनाये पुस्तक हैं ?

१११ प्रश्न—(द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्च०) मन्त्रब्राह्मण तथा इतिहास पुराण के द्रष्टा निर्माता एक ही हैं। वात्स्यायन जी के इस कथन से भी ब्राह्मणों से भिन्न इतिहास पुराण प्रमाण रूप क्या सिद्ध नहीं हैं ॥

१११ उत्तर-यदि इतिहास पुराण मन्त्र ब्राह्मण के द्रष्टा निर्माता एक ही आप मानते हैं तो क्या देवी भागवतादि ग्रन्थों में लिखे युग युग के पृथक् २ पुराण कर्त्ता २८ लिखे हैं, वह सब मिथ्या हैं? कृष्णद्वैपायन व्यास इसी द्वापर में हुवे हैं, यह तो आप के पुराण ही साक्षी देते हैं। फिर वाजसनेयादि ऋषि मन्त्र भाग के कर्त्ता, याज्ञवल्क्यादि शतपथादि के कर्त्ता और व्यास पुराणों के कर्त्ता हैं। यह अनेक तो आप के ही मत से हो गये। अब आप किसी एक का नाम बताइये जिस ने मन्त्र ब्राह्मण पुराण बनाये हों, एक नाम न बताया तो आप हार गये। आगे पुस्तक न लिखना॥

६-धर्मविषय

११२ प्रश्न-तुम्हारे मत में धर्म का लक्षण क्या है। यदि कहो कि जो वेदप्रतिपादित है वही धर्म है, तो वेदप्रतिपादित एक शब्द से कहा जाने वाला कौन धर्म है। यदि मीमांसा सूत्रानुसार चोदनालक्षण मानो तो क्या तुम यज्ञ के यथार्थ विधान को धर्म मानते हो॥

११२ उत्तर-वेदप्रतिपादित को क्या आप धर्म नहीं मानते? "वेदप्रणिहितोधर्मः" को छोड़ दिया?

११३ प्रश्न—जब सर्व सम्मति से विधि वाक्य मन्त्र नहीं किन्तु मन्त्र विधेय हैं। गौतमीय न्याय तथा वात्स्यायन भाष्य (अ० २ । १ ॥ ६० । ६१ । ६२) इत्यादि से सिद्ध है कि विधि, अर्थवाद, अनुवाद ये तीनों प्रकार के वाक्य ब्राह्मण ग्रन्थों में ही हैं। यही बात मीमांसादि के प्रमाणों से भी ठीक २ सिद्ध हो जाती है। इस के अनुसार चोदनालक्षण विधायकवाक्य [अग्निहोत्रं जुहुयात्] इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों के हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थ तुम्हारे मत से वेद हैं नहीं, जो वेद है वह विधायक नहीं किन्तु स्वयं विधेय है। तब मीमांसा के अनुसार तुम्हारे मत में वेदोक्त धर्म कुछ भी नहीं रहा सो क्या अब धर्महीन कूंछे नहीं रह गये॥

११३ उत्तर—क्या वेद में विधिवाक्य नहीं हैं? यदि प्रतिज्ञा करो तो विधिवाक्य दिखा देंगे। देखो "पशून् पाहि" इत्यादि सैंकड़ों विधि हैं॥

११४ प्रश्न—क्या अब भी नहीं समझे कि एक तिल भर भी वेदोक्त धर्म तुम्हारे हाथ न लगा। क्या विधायक और विधेय के मर्मांश को समझने वाला समाजियों में कोई भी सर्वज्ञादि (१) है वा नहीं। क्या

कहीं विद्वन्मण्डली में कोई भी समाजी किसी भी युक्ति प्रमाण से मन्त्रों को विधायक सिद्ध करने का साहस रखता है ?

(१) नोट—उरू नाम बहुत आंखों वाला आदि कोई हो तो वैसा करे, एक दो आंख वालों का काम नहीं है॥

११४ उत्तर—हज़ार शिर में हज़ार नेत्र मानने वाले (हिसाब से प्रति शिर १ नेत्र होने से) ईश्वर का ठट्ठा करने वाले सनातनी अब १। २ नेत्रों के आप जैसे लेखकों का क्या पूजन नहीं करेंगे ? क्या अब कोई नई सृष्टि आप ने विश्वामित्र से रचनी सीखी है। जिन मनुष्यों के ५ वा ७ आंख हों तब आर्यों का तिलभर मनभर धर्मांश देख सकेंगे॥

११५ प्रश्न—यदि कोई ऐसा साहस रखता हो तौ अपना नाम प्रकट करे और वेदतत्वार्थविदों की सभा में मन्त्रों का विषय होना मीमांसा की रीति से सिद्ध कर दे तौ ५०००० रु० पारितोषिक दिया जायगा। क्या समाजी लोग सब सचेत होकर हमारा मत वेदोक्त वेदानुकूल है ऐसा सिद्ध करके अपना मुख उजला कर लेंगे। अथवा ऐसा करने को कटिबद्ध न हों तौ क्या

सनातनधर्मी लोग नहीं मान लेंगे कि इन समाजियों का वेदोक्तधर्म मानने का हल्ला संसार को धोखा देने मात्र के लिये है ॥

११५ उत्तर—आपने कभी ५०००० पचास हज़ार रुपया देखा भी नहीं है। यदि दम है तो किसी बैङ्क में जमा कर दीजिये। लपोड़शङ्खों की कहानी नहीं सुनी जाती है। शायद पचास हज़ार रुपया आपने ज्योतिषचमत्कार का उत्तर लिख कर महाराज बड़ौदा से लेने का स्वप्न देखा होगा। इस लिये यह शर्त लगाते हैं। जब आप के पास रुपया नहीं है तो वृथा नोटिस क्यों छापते हैं? यदि यह छापते कि हम शिष्य होने की पुनरावृत्ति करेंगे तो ही ठीक था ॥

११६ प्रश्न—एक शब्द से कहा जाय, ऐसा वेद का विषय क्या है। क्या इस बात को समाजी लोग बता सकते हैं। वेद का प्रतिपाद्य विषय ख़ास कर एक यज्ञ है। क्या इस बात को महर्षि आपस्तम्ब, जैमिनि, वात्स्यायनादि के प्रमाणानुसार समाजी लोग ठीक २ वैसा ही मानते हैं। यदि मानते हैं तो पद्धति बनाने के लिये यज्ञ का स्वतःप्रमाण विधान कहां से लावेंगे।

क्या मन्त्रों को विधेय विधायक दोनों मान लेंगे ॥

११६ उत्तर—क्या यज्ञ शब्द का अर्थ आप ऐसे यज्ञों को ही समझ बैठे हैं, जिन में आपने बकरी के दूध दुहा कर मलाई का नाम वपा धरा था और बकरे के स्थान में बकरी पर "मेढ्रन्ते शुन्धामि" का ठट्ठा सब ने आप का उड़ाया था। क्या वह यज्ञ विधिपूर्वक था? यदि विधिहीन था तो सेठ माधवप्रसाद जी के सहस्रों रुपये आपने उठाये। "यज्ञ" शब्द का अर्थ बड़ा महान् है। यज धातु के अर्थ देखो देवपूजा सङ्गतिकरण दानादि अनेकार्थ होकर यावत् सांसारिक पारलौकिक कार्य हैं सब में यज्ञ का अर्थ है। हम समाजी ऋषिवाक्यों को बहुत आदर से देखते हैं ॥

११७ प्रश्न—अमुक मन्त्र से अमुक काम इस २ रीति से करे, ऐसा विचार जिस ग्रन्थ में लिखा है उसी ग्रन्थ के वैसे वाक्य विधि वा विधायक हैं। और जिस मन्त्र की प्रतीक दिखाई गई वही मन्त्र विधेय है। क्या महर्षियों के स्थापित नियम को समाजी लोग ठीक २ ऐसा ही मान लेंगे ॥

११७ उत्तर—न तो वेद में ही समस्त मन्त्र विधिवाक्य

हैं। न ब्राह्मणों में समस्त पाठ विधि हैं। वेद में भी विधिवाक्य मिलेंगे, ब्राह्मण में भी। क्या आप समस्त ब्राह्मणों में विधिवाक्य ही मानते हैं?

११८ प्रश्न-यदि महर्षि मर्यादा को वेदोक्तधर्म विषय में समाजी लोग न मानेंगे तौ वेद को भी कैसे मान सकेंगे तब वेद के मान्य होने में प्रमाण ही क्या रहेगा अर्थात् उस हालत में वेद का भी खण्डन कैसे कर सकेंगे॥

११८ उत्तर-महर्षि मर्यादा को तौ समाजी मान लेंगे परन्तु आप तौ स्वयं स्वा० द० स० को महर्षि लिख चुके हैं। अब आप महर्षि स्वा० द० स० की मर्यादा को क्यों नहीं मानते ?

११९ प्रश्न-समाजियों के मत में वेदोक्त यज्ञ धर्म का मान्य होना भी अब सिद्ध नहीं हुवा तौ इन लोगों का वेदोक्त धर्म मानने का दावा मिथ्या सिद्ध हो गया। क्या समाजी लोग अब भी वेदोक्त धर्म के झूठा का हठ नहीं छोड़ेंगे ?

११९ उत्तर-वेदोक्तयज्ञ धर्म का मान्य तौ समाजी करते हैं परन्तु आप के कराये इटावे के जैसे कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, जैसे यज्ञ को समाजी नहीं मानते,

न जिन में मुष्टि प्रहार से बकरे मारे जांय, ऐसे यज्ञों का आदर करते हैं ॥

१२० प्रश्न—यदि कहें कि (धृतिः क्षमा०) इत्यादि धर्म के दश लक्षण हम मानते हैं। तो इस का प्रमाण तुम ने क्यों मान लिया ?। जब तब धृति आदि को वेद में धर्म के लक्षण न दिखा सको तब तक धृत्यादि वेदविरुद्ध क्यों नहीं हैं। वेद में न दिखा कर भी धृत्यादि को मानते हो तो मूर्तिपूजादि के लिये वेद के प्रमाण का हठ क्यों करते हो ॥

१२० उत्तर—अब आप धृति क्षमादि को अधर्म मानते हों तो दावा कीजिये हम उन को वेदानुकूल सिद्ध करेंगे। मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध मन्त्र स्पष्ट "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इत्यादि प्रमाण हैं। ऐसे ही आप भी 'न धृतिर्धर्मोस्ति' दिखादें तो ठीक लगे ॥

१२१ प्रश्न—धृत्यादि धर्म के सामान्य लक्षण हैं वा विशेष हैं। क्या तुम सामान्य विशेष दोनों प्रकार का धर्म ठीक २ मानते हो। एक स्थान में धृत्यादि दश लक्षण कहे और एक स्थान में (वेदःस्मृतिः) वेद स्मृति आदि चार को साक्षात् धर्म का लक्षण कहा तो क्या

यह विरोध नहीं हैं। अर्थात् धर्म के लक्षण चार कहना ठीक हैं वा दश, यदि चार साक्षात् हैं तो दश क्या साक्षात् नहीं हैं। क्या उक्त दश लक्षण गौण असाक्षात् हैं॥

१२१ उत्तर—वेद स्मृति यह धर्म के विधायक बताये हैं। धृत्यादि जहां हों वहां धर्म का होना पाया जाता है। यह शङ्का तौ शायद आप जैसे दूरदर्शियों को ही हो सकती है। सो तौ सनातनी भी मानते हैं॥

१२२ प्रश्न—क्या तुम स्मृति को साक्षात् धर्म का लक्षण मानते हो। यदि मानते हो तो स्मृति का स्वतः प्रामाण्य सिद्ध होगया कि नहीं। क्या अब भी नहीं शोचोगे। यदि स्मृति को साक्षात् धर्म का लक्षण नहीं मानते तो क्या वेद को भी साक्षात् धर्म का लक्षण न मानोगे। और वेद को मानने पर स्मृति को कैसे छोड़ सकोगे। अर्थात् (वेदःस्मृति.०) इत्यादि श्लोक को ठीक प्रामाणिक मानते हो वा नहीं॥

१२२ उत्तर—यदि स्मृति शब्द के साथ साक्षात् आने से स्मृति स्वतः प्रमाण हो तौ "स्वस्य च प्रियमात्मनः" से भी तौ साक्षात् का इतना ही संबन्ध है। आत्मप्रिय को भी स्वतः प्रमाण मानोगे? यदि मानोगे तौ लिखो॥

१२३ प्रश्न—तुम्हारे मत में सदाचार धर्म का लक्षण क्या है। वे सत्पुरुष कौन हैं कि जिन का आचार धर्म का लक्षण कहा और माना जावे। जो मर्यादापुरुषोत्तम बड़े कीर्त्ति वाले पुरुष हो चुके, जिन के आचरणों का व्याख्यान विस्तार के साथ इतिहास पुराणों में लिखा गया, क्या उस से भिन्न कोई सदाचार धर्म का लक्षण हो सक्ता है तो उस के लिये युक्ति तथा प्रमाण क्या है?॥

१२३ उत्तर—हमारे मत में वेद के अप्रतिकूल स्मृति और वेदस्मृति के अप्रतिकूल सदाचार और वेद, स्मृति, सदाचार के अप्रतिकूल आत्मप्रिय को धर्म मानते हैं॥

१२४ प्रश्न—क्या तुम लोग सत्यभाषण को सब से बड़ा धर्म मानते हो। यदि मानते हो तो स्वा० द० की सैकड़ों मिथ्या बातों को सत्य ठहराने के हठ को क्यों नहीं त्यागते। क्या ऐसे मिथ्या के प्रतिपादन से सत्य का आत्मघात नहीं होता? और होता है तो ऐसी बड़ी अधर्म की गठड़ी अपने सिर क्यों धरते हो॥

१२४ उत्तर—"नास्ति सत्यात्परोधर्मः" को हम मानते हैं। क्या आप नहीं मानते? सनातनधर्मी तो सब मानते हैं। स्वामी दयानन्द की मिथ्या बातें आप

ने कोई यहां लिखी होती तब उत्तर देते । परन्तु आप की बातों का क्या ठिकाना है । जब स्वामी दयानन्द को महर्षि परम गुरु सत्यवक्ता आप लिख चुके हैं तो आप ही मिथ्यावादी दोनों प्रकार सिद्ध हैं ॥

१२५ प्रश्न—जब वेदोक्त धर्म तुम्हारा सिद्ध नहीं हुआ और स्मृति पुराणादि को तुम अविकल्प प्रमाण मानते नहीं तब क्या मन माना स्वकपोलकल्पित ही तुम्हारा धर्म है वा अन्य कुछ है ॥

१२५ उत्तर-हमारा वेदोक्त धर्म सर्वत्र प्रसिद्ध है । भूमण्डल में डङ्का बजता है । शतशः अन्यधर्मी भी वेदोक्त धर्म की शरण में आते हैं । अमेरिका वा योरोप के वासी भी आर्यसमाज के इस उपकार को शिर झुकाते हैं । आप के कहे कुछ भी न होगा ॥

१२६ प्रश्न—क्या तुम में से किसी भी विचारशील ने कभी सोचा है कि हमारा मान्य धर्म अव्यवस्थित है अथवा आगे कभी सोचोगे और धर्मको व्यवस्थित करोगे॥

१२६ उत्तर—हमारे आर्य धर्म वेदोक्त मर्यादा को सुव्यवस्थितहोना भारतवासी द्वीपान्तरवासी सब जानते

मानते हैं। आप ही विचार करें कि सनातन धर्म की क्या व्यवस्था है॥

१२७ प्रश्न—यदि सन्ध्या करने में मार्जन से आलस्य दूर होता है तो सूंघनी (हुलास) क्यों नहीं सूंघ लेते। थोड़ा जल छिड़कने से आलस्य भागता है तो दश बीस घड़ा जल ऊपर गिराके जन्म जन्मान्तरों के आलस्य को क्यों नहीं भगा देते॥

१२७ उत्तर—कल को आप यह भी प्रश्न करेंगे कि यदि एक पान के खाने से मुख स्वच्छ हो जाता है तौ सौ दोसौ पान खाके जन्म जन्मान्तरों तक मुख शुद्ध क्यों नहीं करते या मासा रत्ती हुलास से आलस्य दूर हो तौ सेर दो सेर हुलास लेकर जन्मान्तरों के आलस्य को दूर कर लीजिये॥

१२८—यदि आचमन से कण्ठ के कफ की निवृत्ति होती है तौ खांसी तथा दमा के रोग की दवा करने में डाक्टर वैद्यों को क्यों बुलाते और दवाई में सैंकड़ों रुपया क्यों ख़र्च करते हो ?

१२८ उत्तर—यदि वैद्यक के महाग्रन्थ में "तैलाद्धा-युर्विनश्यति" पाठ देख आप जैसे बुद्धिमान् आंधी आते

समय बेल विखरवाने लगें या यावत् वायु रोग हैं, उन में तैल पिलवाने लगें और कहें कि वायु रोगों में डाक्टर की ज़रूरत नहीं तो क्या उचित है? ऋषिवाक्य प्रमाण न रहेगा? या "औषधं जान्हवीतोयम्" कहने से सारा वैद्यक शास्त्र छोड़ सब रोगों में गङ्गाजल पान कराके ही महावैद्य बनना चाहते हैं? अपनी आंख का शह-तीर न देख दूसरों के तिनके का देखना इसे ही कहते हैं॥

१२९ प्रश्न- क्या कर्मकाण्ड में ऐसी युक्ति लिखने कहने से कर्म का खण्डन नहीं होता। क्या ऋषि महर्षियों ने मार्जनादि के ऐसे प्रयोजन कहीं लिखे हैं॥

१२९ उत्तर—मनु जी ने मांसाशन के निषेध में "मां स भक्षयिता" ऐसी युक्ति देकर अक्षरों को तोड़ कर अर्थ किया है "मां"=मुझ को, "सः" वह। यह मांस का अर्थ किया है तौ क्या मनु जी से भी आप बूझेंगे कि यह आप ने मांसभक्षण का निषेध किया है सो किसी अन्य ने भी यह युक्ति दी?

१३० प्रश्न—जब ब्राह्मण श्रुति (अयज्ञिया वै माषा अयज्ञियाश्चणकाः) में लिखा है कि होम यज्ञ में उड़द चना आदि चढ़ाने नहीं चाहियें। फिर संस्कारविधि

ो उड़दों का होम करना स्वा० द० ने क्यों लिखा। क्या
स के लिये किसी वेद मन्त्र का प्रमाण दे सकते हो,
माण नहीं दे सकते तो वेदविरुद्ध स्वा० द० का लिखना
यों नहीं मान लेते ॥

१३१ प्रश्न–यदि कहो कि यजु० अ० १८ कं० १२ में माष नाम उड़द यज्ञ में चढ़ाना लिखे हैं तो यह भूल है क्योंकि वहां यज्ञ में चढ़ाने के पदार्थों का परिगणन नहीं है किन्तु यज्ञ के द्वारा हमारे वाजादि पदार्थ पुष्ट हों अर्थात् वाजादि पदार्थ मुझ को यज्ञ द्वारा प्राप्त हों ऐसी प्रार्थना की गयी है । यदि होम के वस्तुओं का परिगणन मानोगे तो क्या आगे पीछे की कण्डिकाओं में कहे प्राण, अपान, धन, शान्ति, धृति, मट्टी, पत्थर इत्यादि सब का स्वाहा करोगे ॥

१३० । १३१ उत्तर–आप ब्राह्मणश्रुति वचन प्रकरण पूरा पता देते तो उत्तर तत्काल दिया जाता ॥

१३२ प्रश्न–स्वा० द० ने अपनी संध्या में मन से परिक्रमा करना लिखा है। परिक्रमा का अर्थ सब ओर पग चलाना है सो बताओ कि मन से पग कैसे चलते हैं?

१३२ उत्तर–हम तो आप के सनातनधर्म में मन से

परिक्रमा क्या, मन से स्नान, आचमन, पुष्प, चन्दनादि चढ़ाना तक मानसी स्तोत्रों में १६ षोडशोपचार पूजा दिखादें, फिर परिक्रमा मन से कितनी बड़ी बात है?

१३३ प्रश्न—तुम्हारे मत में विना भोगे पाप दूर नहीं होते, तब (पापदूरीकरणार्था अघमर्षणमन्त्राः) स्वा० द० के इस लेखानुसार अघमर्षण मन्त्र से पाप कैसे दूर हो जाते हैं? यदि नहीं दूर होते तो स्वा० द० का लिखना मिथ्या क्यों नहीं हुआ?

१३३ उत्तर—अघमर्षण सूक्त जब आप के सन्ध्याकार भी इसी सूक्त को कहते हैं तब स्वामी जी से ही क्यों प्रश्न किया जाय। उन्होंने केवल उसी का अर्थ पाप-दूरीकरण लिख दिया है। रही विना भोगे पाप दूर होने की बात, सो भी "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" आप के ऊपर भी वही प्रश्न होगा। आप के यहां "गङ्गा गङ्गेति०" गङ्गा २ कहने से हज़ारों कोश दूर बैठे पाप सभी नष्ट हो जाते हैं तो समस्त प्रायश्चित्तों पर हरताल फेरने की तयारी करें॥

१३४ प्रश्न—स्वा० द० के बनाये पञ्चमहायज्ञविधि में (अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः) ऐसा लिख के आगे नाभिः,

हृदयम्, कण्ठः, शिरः लिखा है । सो चार संहिताओं के प्रमाण से सिद्ध करो कि नाभि आदि का नाम इन्द्रिय कहां लिखा है । तथा (वाक् वाक्) इत्यादि मन्त्र चार संहिताओं में कहीं नहीं लिखे तो वेदविरुद्ध क्यों नहीं हैं ? ॥

१३५ प्रश्न—स्वा० द० ने अपने सन्ध्योपासनविधि में (अथ मार्जनमन्त्राः) लिख कर (ओं भूः पुनातु शिरसि) इत्यादि वाक्य लिखे हैं सो क्या किसी वेद में वे मार्जन के मन्त्र हैं ? यदि नहीं हैं तो वेदविरुद्ध कैसे न होंगे और तुम्हारे मत में वेदविरुद्ध वाक्य मन्त्र क्यों कर हो सकेंगे ? ॥

१३४ । १३५ उत्तर—इन्द्रियस्पर्श मन्त्रों में आप को वाक्२ पाठ न दीखा जो सब से पहले है और इन्द्रिय भी है । नीचे जा गिरे, यही भूल की । वेद में वागिन्द्रियादि की शुद्धि बलप्राप्ति आदि का विधान है, अतः वेदविरुद्ध नहीं हैं । यदि आप चारों संहिताओं में आये पाठ को ही मन्त्र मानते है तो "अष्टादशाक्षरोमन्त्रः' पाठ को पुराणों से काटना पड़ेगा ॥

तथा स्वामी जी ने "भूः" आदि महाव्याहृति जो यजुर्वेद के भी कई मन्त्रों में आई हैं, गायत्री के पूर्व भी सब जपते हैं, उन को मन्त्र लिख दिया तो क्या हुवा? आप के पौराणिक सन्ध्योपासन में तो (पृथिव त्वयेति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः) लिखा है, वह किस संहिता का मन्त्र है? कौनसी ऋषि की अनुक्रमणी का पाठ है? क्या आपने (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) को मानना छोड़ दिया है? यदि मानोगे तो (अष्टाक्षरो महामन्त्रः) इस और द्वादशाक्षर=(नमो भगवते वासुदेवाय श्री कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय) अष्टादशाक्षर मन्त्र को भी वेदसंहिताओं में दिखाना पड़ेगा। सब तन्त्रों को भी वेद मानना पड़ेगा, जहां श्रीं, ह्रीं, क्लीं बीज हैं। चलनी भी छाज के सामने बोलती है॥

१३६ प्रश्न—(शन्नो देवी०) मन्त्र का विनियोग आचमन करने में किस प्रमाण से किया है। यदि कहो कि उक्त मन्त्र में जल पीने का अर्थ है, तो स्वा० द० की सन्ध्या में दिखाओ कि जल पीने का अर्थ कहां है। जब नहीं है तो तुम्हारा आचमन वेदविरुद्ध क्यों नहीं हुआ॥

१३६ उत्तर—"शन्नोदेवी०" इस मन्त्र में जल पीने का अर्थ आप को स्वीकार है, फिर चाहे दयानन्द सरस्वती जी ने न भी किया तो क्या हानि है? वेदों के अनेकार्थ मन्त्र हैं। विशेषता ईश्वरपरक अर्थों की सब ने मानी है—"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" इत्यादि प्रमाण देखो। परन्तु आप के पौराणिक पद्धतिकारों ने (शन्नो०) शनि ग्रह का मन्त्र बताया है। ज़रा शनि देव का नाम तक ही इस में या किसी वेदभाष्य में बता दीजिये। "शम्"=कल्याणम् "नः"=अस्मभ्यम् दो पदों को मिला कर "शन्नः" यह बना है, फिर शनैश्चर का अर्थ करना दिनधौली धोखा नहीं तो क्या है? अपनी आंख का शहतीर न देख कर दूसरों के तिनकेपर दृष्टि गेरते हो॥

१३७ प्रश्न—क्या यह सन्ध्याकर्म पञ्चमहायज्ञों में से कोई महायज्ञ है। यदि है तो कौनसा और उस के लिये प्रमाण क्या है। यदि ५ महायज्ञों से पृथक् है तो स्वा० द० ने इस को पांच महायज्ञों में क्यों धर घसीटा है॥

१३८ प्रश्न—यदि स्वाध्याय वा ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या का नाम रक्खो तो (अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः) इस मनु जी के प्रमाणानुसार क्या पढ़ाने को सन्ध्या मानते हो? जिन

को यह भी ख़बर न हो कि वास्तव में पञ्चमहायज्ञ कौन २ हैं, उन का लिखना वेद शास्त्रों से विरुद्ध क्यों नहीं होगा और वेदानुकूल कैसे हो सकेगा ?

१३७ । १३८ उत्तर-इन प्रश्नों का उत्तर महामोहवि-द्रावण के उत्तर में आर्यसिद्धान्त में आप ने ही विशद रूप से लिखा है, उसे देखलो। यदि आप ने उस समय अज्ञान से अथवा कपट से झूठ लिखा है तो प्रथम आप बतावें कि अब आप ने किस गुरुकुल में ज्ञान प्राप्त किया ? क्या २ पढ़ा है ? जो तब नहीं पढ़ा था ? अपने नये गुरु जी का नाम बतावें ? 'ब्रह्म' नाम वेद का है 'वेद' पाठ का नाम स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ है, फिर क्या सन्ध्योपासन समय में उपासना स्तुति प्रार्थना का मन्त्र पाठ करने को ब्रह्मयज्ञ कहना बुरा है ॥

१३९ प्रश्न-सन्ध्योपासन में अमुक २ काम अमुक २ मन्त्र से स्वा० द० के लिखे क्रमानुसार करे, इस में वेद का प्रमाण क्या है ? गायत्री मन्त्र से शिखा बांधना-रक्षा करना (उद्वयं०) से उपस्थान (ऋतं च०) सूक्त से अघमर्षण करना, इस में क्या वेद का कोई प्रमाण दे सकते हो। यदि नहीं दे सकते तो तुम्हारी सभी सन्ध्या वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ॥

१३९ उत्तर–गायत्री मन्त्र से शिखा बांधना, रक्षा करना आदि आप वेदविरुद्ध नहीं कह सकते क्योंकि पौराणिकपक्षी सन्ध्याविधियों में भी "न प्रणवगायत्र्या शिखां बद्ध्वा रक्षां कुर्यात्" इत्यादि पाठ हैं, जो आप भी मानते होंगे? अभी आप को वेदविरुद्ध वाक्य के अर्थ को ही ख़बर नहीं हो पाई। "विरोधे त्वनपेक्षं स्या०" इस शास्त्रवचन से यावत् विरोधक मन्त्र आप न बतावें, तब तक वेदविरुद्ध कहने को मुंह न कीजिये॥

१४० प्रश्न–क्या अग्निहोत्र देवयज्ञ है। यदि है तौ प्रमाण क्या है। यदि कहो कि (होमोदैवः) होम देवयज्ञ है तौ अग्निहोत्र भी होम होने से देवयज्ञ हो गया तौ क्या अन्य यज्ञों में वा संस्कारों में होम नहीं होता। यदि होता है तौ क्या वे सभी देवयज्ञ माने जावेंगे। यदि ऐसा है तौ पञ्चमहायज्ञों से भिन्न कोई अन्य होम यज्ञ क्या नहीं है॥

१४० उत्तर–" होमोदैवः " इस वचन से देवनिमित्तक आहुति देवयज्ञ हैं ही। सब संस्कारों में भी होम देवपूजन ही है, जिस का विशेष वर्णन श्री पं० तुलसीराम स्वामी के " वैदिकदेवपूजा " नाम पृथक्

छपे व्याख्यान में किया गया है । आर्य लोग उसे ही देवयजन मानते हैं, पौराणिकों के समान "“ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी०" इत्यादि मन माने मन्त्र पढ कर नवग्रहों के ९ टके चढ़वाकर जेब में भर ले जाना नाजेबा समझते हैं, न वह सूर्यादि तक टके पहुंचते हैं, न नैवेद्य पहुंचता है । आर्यों के देवयज्ञों में आहुति दे, अग्निदूत द्वारा सुगन्धादि हव्य सूर्यादि को पहुंचाया जाता है। पौराणिक भाई यह तो बतावें कि शनि, राहु, केतु का दान तो ब्राह्मण लेते नहीं, डकौत पण्डित लेते हैं, परन्तु उन ग्रहों के टके क्यों अवश्य ले लेते हैं ॥

१४१ प्रश्न—क्या शतपथब्राह्मण के द्वितीय काण्ड में लिखा अग्निहोत्र का विधान तुम लोग मानते हो? यदि नहीं मानते तो किस विधि से और किस २ मन्त्र से अग्निहोत्र करना चाहिये? इस के लिये वेद का प्रमाण दे सकते हो। यदि वैसा प्रमाण भी नहीं तो तुम्हारा मनःकल्पित अग्निहोत्रविधि वेदविरुद्ध क्यों नहीं है?

१४१ उत्तर—जहां गृह्यसूत्रों में पञ्चमहायज्ञ लिखे हैं, उन के और शतपथ के लिखे में भी जब भेद है तो

स्वामी जी का भी देवयज्ञ शतपथ से न मिले तो कुछ आश्चर्य नहीं। 'सूर्य्योज्यो०' इत्यादि मन्त्र यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के हैं हो, अतः वेदानुकूल हैं॥

१४२ प्रश्न—बलिवैश्वदेव किसी एक कर्म का नाम है तो किस का है? भोजन के लिये पकाये अन्न को अग्नि में जो आहुति दी जावें, उन को तुम शास्त्रानुकूल देवयज्ञ क्यों नहीं मान लेते?

१४२ उत्तर—"बलिवैश्वदेव" शब्द ही बता रहा है कि विश्व देवों को बलि=भेट देने का नाम है। उस में भी जो देवतार्थ और विश्व=भूत बलि होती हैं, उन दोनों का मिलाकर ही एक भूतयज्ञ नाम है। ब्रह्मभोज के साथ यदि कोई मित्रों को भी भोजन देता है तब भी ब्रह्मभोज ही कहते हैं। इसी प्रकार इस यज्ञ का नाम बलिवैश्वदेव ही है॥

१४३ प्रश्न—मनुस्मृति के प्रमाणानुसार जब तुम पञ्चमहायज्ञ मानते हो तो (मनु० अ० ३। ६७ वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत०) प्रमाण के अनुसार क्या विवाह समय का अग्नि स्थापित रख के उसी में पञ्चमहायज्ञ करते हो? यदि ऐसा नहीं करते तो तुम्हारा पञ्चमहायज्ञ करना

मानना मनु० के प्रमाण से भी विरुद्ध क्यों नहीं है ?

१४३ उत्तर-चाहिये तो विधानपूर्वक विवाह के ही अग्नि को लाकर अग्निहोत्र करना। उस का खण्डन स्वामी जी ने नहीं किया । हम आर्य उसे मानते हैं, परन्तु- " अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः " न्याय से इस अग्नि में भी अग्निहोत्र करना न करने से अच्छा है। क्या आप इसे नहीं मानते ? क्या आप विवाह से ही अग्नि लाये हैं ? यदि नहीं लाये तो आप तो महाभ्रष्ट रहे जाते हैं। आप जैसे को तो दान दक्षिणा देना भी सनातनधर्म के पुराणों में वर्जित किया है " पञ्चयज्ञविहीनाय लुब्धाय पिशुनाय च । हव्यकव्यत्यक्ताय " इत्यादि वाक्य आप ने नहीं देखे। जब स्वयं अग्निहोत्र के आप अधिकारी नहीं हैं, तब सेठ माधवप्रसादादि को कैसे यज्ञ करा बैठे ? अपनी ओर देख कर औरों से प्रश्न करना चाहिये। आर्य्यभाई आप के समान भगवान् से ठट्ठा नहीं करते हैं कि दूर्वा के तृण देकर कहें कि:-

नानारत्नसमायुक्तं वैडूर्यमणिभूषितम् ।
स्वर्णसिंहासनं देव प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थात् अनेक रत्न जड़ा वैडूर्यमणि से सजाया यह सोने का सिंहासन प्रीति के लिये लीजिये। दूब के तिनके देकर भगवान् को बहकाते हैं। यदि आज दिन कोई सोना बता कर पीतल देदे तौ क़ैद में जाता है॥

१४४ प्रश्न—पूर्वादि दिशाओं में सेवकादि सहित इन्द्रादि देवों के नाम से जो तुम ग्रास रखते हो। उन से क्या मतलब है? वे बलि किस २ को दी जातीं और कैसे पहुंच जातीं हैं? यदि इन्द्रादि ईश्वर के नाम हैं तौ क्या उस २ दिशा में उस २ नाम का ईश्वर खण्डित होगया है? यदि ऐसा है तौ वह साकार क्यों न हुवा? अथवा इन्द्रादि किसी प्राणी के नाम हैं तब क्या उन २ को पूर्वादि दिशा में खिलाने को बैठा के एक ही एक ग्रास खाने को दोगे?

१४४ उत्तर—इन्द्रादि नाम परमात्मा के ही स्वामी जी ने लिखे हैं। सब ओर एक ही परमात्मा जुदे २ नामों से बताने में निराकार के तौ टुकड़े न हुवे, न खण्डित हुवा क्योंकि वह निराकार ही सब दिशाओं में एकरस वास कर सकता है, साकार सर्वत्र नहीं रह सकता। परन्तु आप के पौराणिक भाई जब सरसों के दाने उछाल

कर सब ओर को बखेरते हैं, दिग्बन्धन करते हैं तब कहते हैं:-

पूर्वे रक्षतु गोविन्द आग्नेय्यां गरुडध्वजः।
केशवोवारुणीं रक्षेत् वायव्यां मधुसूदनः॥

एक कृष्णचन्द्र साकार को पृथक् दिशाओं में खण्ड २ करते हैं और निराकार दिशाओं को बांधना बताते हैं, इस का क्या उत्तर होगा ?

१४५ प्रश्न—लकड़ी के बनाये ऊखली मूसल के पास जो तुम एक ग्रास रखते हुवे हाथ जोड़के कहते हो कि (वनस्पतिभ्यो नमः-मुसलोलूखले) हे ऊखली मूसल ! वनस्पति की लकड़ी से बने हुवे ! तुम को नमस्कार है। सो क्या ऊखली मूसल उस को खाते वा प्रसन्न होते हैं। क्या यह ऊखली मूसल की पूजा नहीं है। ऐसी हालत अपनी होते हुवे भी मूर्त्तिपूजा के खण्डन में तुम को लज्जा क्यों नहीं होती है॥

१४५ उत्तर—स्वामी जी ने उलूखल मूसल के हाथ जोड़ना नहीं लिखा है। आप को चाहिये कि हाथ जोड़कर इस मिथ्या लेख के लिये क्षमा मांगें और लज्जा

करें । वनस्पतियों को ' नमः ' प्रणाम नहीं, बल्कि " नमम् इत्यन्ननाम पठितं निघण्टौ" क्या याद न रहा कि अन्न का नाम भी नमस् है ? परन्तु स्वामी जी ने " वनस्पतिभ्यो नमः " केवल इतना ही नहीं लिखा है । उस का अर्थ भी " वनानां लोकपालानां पतय ईश्वरगुणाः० " इत्यादि वही ईश्वरार्थ किया है । ईश्वर को नमस्कार करना आस्तिकों का काम ही है ॥

१४६ प्रश्न–तुम्हारी संस्कारविधि के आरम्भ में (संस्काराः षोडशैव हि) लिखा है । सो यह बताओ कि संस्कारों के सोलह होने में प्रमाण क्या है ? १६ से अधिक वा कम क्यों नहीं हैं । स्मृति का प्रमाण वेदानुकूल सिद्ध करने पर माना जा सकता है । इस से मूल वेद से संस्कारों के १६ होने का प्रमाण दीजिये ॥

१४६ उत्तर-आप को स्मृतियों से तो सोलह संस्कार होने स्वीकृत हैं । इस प्रश्न से यह तो विदित होता ही है कि वेदमन्त्र का प्रमाण मांगते हैं, सो जब तक आप वेदमन्त्र में सोलह से अधिक संस्कार सिद्ध न करदें तब तक प्रश्न बेबुनियाद है क्योंकि " विरोधस्त्व० " इस सिद्धान्त से वेदविरुद्ध वही होगा, जो वेदमन्त्र विरोध में दिखाया जावे ॥

१४७ प्रश्न स्वा० द० ने १६ संस्कार होने की प्रतिज्ञा करके १७ क्यों छपाये। जिस को सन्देह हो वह आर्य-समाज की संस्कारविधि में गिन कर देख लेवे कि अब तक भी १६ संस्कारों की प्रतिज्ञा बनी है और १७ छपते जाते हैं। १–गर्भाधान, २-पुंसवन, ३–सीमन्त, ४–जात-कर्म, ५–नामकरण, ६–निष्क्रमण, ७–अन्नप्राशन, ८–चूडा-कर्म, ९–कर्णवेध, १०–उपनयन, ११–वेदारम्भ, १२–समा-वर्त्तन, १३–विवाह, १४-गृहाश्रम, १५-वानप्रस्थ, १६-संन्यास, १७–अन्त्येष्टि। ये सत्रह संस्कार पृथक् हेडिङ्गसहित प्रतिज्ञा से विरुद्ध क्यों अब तक छपते हैं॥

१४७ उत्तर–स्वामी जी ने सोलह संस्कार ही संस्कार-विधि में बताये हैं परन्तु यह उस समय के संशोधकों की नमकहलाली का फल है। विवाह और गृहाश्रम पृथक् २ संस्कार नहीं हैं। विवाहित स्त्री पुरुषों के सन्ध्यो-पासन अग्निहोत्रादि विधान तथा शालाकर्मादि बहुत सी बातें तमाम जीवन के एक भाग गृहस्थाश्रम भर का कृत्य है। यूं तो मोटे अक्षरों में यह भी छपा था–" अथ शालाकर्मविधिं वक्ष्यामः " क्या यह एक जुदा संस्कार हो जायगा? सब संस्कार एक वेदी पर ही समाप्त

होते हैं, परन्तु गृहाश्रम का विधान है। यथा—पञ्चमहायज्ञ, पक्षयज्ञ, नवसस्येष्टि, संवत्सरेष्टि, शालाकर्म; सब कुछ गृहाश्रम प्रकरण में ही लिखा है। वह कोई संस्कार नहीं है, इस से उस में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि के लक्षण भी लिखे हैं। "गृहस्थाश्रम" संस्कार पृथक् नहीं है। भूल होना कोई बड़ी बात नहीं है। आप के पुस्तक में भी इस प्रश्न के क्रमशः अङ्क लिखते २ विवाह संस्कार के आरम्भ में १२ के स्थान में ९३ वें का अङ्क छप रहा है। आपने न बताया कि कितने संस्कार आप मानते हैं ? तब मैं बताऊंगा कि कितनी पुस्तकों से विरोध पड़ता है॥

१४८ प्रश्न—मनु० अ० २ में लिखा केशान्तसंस्कार स्वा० द० ने क्यों नहीं लिखा। यदि वह भी लिखा जाता तो १८ संस्कार क्या नहीं होते। तब १६ ठीक हैं वा अठारह॥

१४८ उत्तर—केशान्त संस्कार गृह्यसूत्रों में पृथक् नहीं लिखा। इस लिये स्वामी जी ने भी पृथक् नहीं लिखा। हां, संस्कारों में न मिलाकर उस को एक अंश मान कर सत्यार्थप्रकाश के दशमसमुल्लास में उस का वर्णन लिखा है। पारस्कर गृह्यसूत्र में चूडाकर्म के साथ ही उस का भी सूत्र लिखा है॥

१४९ प्रश्न—कर्णवेध संस्कार जब मनु में नहीं है तो स्वा० द० ने किस प्रमाण से मान लिया ? क्या इस के लिये वेद का प्रमाण दे सकते हो ॥ ॥

१४९ उत्तर—संकारविधि में ही " कर्णवेधोवर्षे तृतीये पञ्चमे वा " छपा है जो आश्वलायन गृह्य का बताया है, क्या आपने नहीं देखा। हां, क्यों देखते "पश्यन्तोपि न पश्यन्ति" यदि मनु में नहीं तो क्या गृह्य मनु से कम प्रमाण है। स्वामी जी ने गृह्योक्त होने से मान लिया है ॥

१५० प्रश्न—यदि विवाह गृहाश्रम को एक करके १७ का दोष मेटना चाहो तो उपनयन वेदारम्भ एक समय में होने के कारण दोनों एक हो जावेंगे। तब १६ भी न रहेंगे। यदि कहो कि उपनयन वेदारम्भ का कर्म अलग २ होगा तो विवाह गृहाश्रम के कर्म भी एक साथ नहीं हो सकते। क्या वेदी पर ही गृहाश्रम के काम होने लगते हैं ॥

१५० उत्तर—उपनयन और वेदारम्भ पृथक् २ हैं, चाहे उसी दिन करो चाहे फिर करो। यूं तो कर्णवेध भी चाहे कोई चूड़ाकर्म के ही दिन एक साथ ३ वर्ष में करादे, परन्तु विधान पृथक् ही है। वेदी भी पृथक् ही होती हैं। पौराणिक भाई तो उपनयन वेदारम्भ को ही

दिन समावर्तन भी कर देते हैं, तो क्या तीनों संस्कार एक हो जावेंगे? परन्तु पौराणिक पन्थी भी वेदी ३ तो पृथक् बनाते हैं। ज़रा देख भालकर क़लम उठाया करो ॥

१५१ प्रश्न—संस्कारविधि के आरम्भ के ३ श्लोक में स्वा० द० ने संस्कारों का प्रयोजन आत्मा और शरीर की शुद्धि मानी है सो क्या आत्मा अशुद्ध हो जाता है। क्या आत्मा वस्त्रादि के तुल्य शुद्ध हुवा करता है। तथा अन्त्येष्टि संस्कार से किस की शुद्धि होती है। शरीर तो नष्ट हो गया तब जो रहा ही नहीं वह शुद्ध कैसे होगा? यदि मृतक का आत्मा अन्त्येष्टि से शुद्ध होता है तो शुद्धि प्रसन्नता के एक होने से प्रसन्नतारूप फल भी श्राद्धादि के द्वारा मृत आत्मा को क्यों प्राप्त नहीं हो सकता?

१५१ उत्तर—संस्कारों से शरीर और आत्मा की शुद्धि अवश्य होती है। यह स्वामी जी ने सत्य लिखा है। क्या आत्मा की शुद्धि को आप नहीं मानते? पुराणों में तो "विप्रयोमलिनात्मकः" लिखा है। मलिनात्मा होगा तब शुद्धात्मा क्यों नहीं? अन्त्येष्टि संस्कार से पहिले शरीर नष्ट होना आप जैसे शरीरों को दीखता है ॥

अन्त्येष्टि की कथा सुनिये—आप के मत में जीव निकलने पर मुर्दे शरीर का नाम प्रेत है या शव ? यदि मुर्दे देह का नाम प्रेत शव है तो "मृतस्थाने शवोनाम तेन नाम्नाप्रदीयते । द्वारदेशे भवेत्पान्थः । चत्वरे खेचरो नाम" लिखते २ उसी को आगे प्रेत लिखा है और चिता में आहुति देते समय "जातवेदोमुखे चैका चैका प्रेतमुखे तथा" लिखा है अर्थात् १ आहुति अग्नि में छोड़े, एक प्रेत के मुख में छोड़े । यहां देह का नाम प्रेत पुकारा है और—

गृहेष्वर्था निवर्त्तन्ते श्मशानान्मित्रबा-
न्धवाः। शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनु
गच्छति ॥ १ ॥ गरुड़पुराणे

आत्मा के साथ कर्म रहते हैं, फिर अशुद्ध या शुद्ध संस्कारों से क्यों न होगा। आप को अन्त्येष्टि के मोदक मोद करा रहे हैं। अब आप सब ओर से बंधे फंसे जाते हैं। पुराण तो देह को ही प्रेत—शव—खेचर—सब कुछ कहे डालते हैं। यदि प्रेत को निकला हुआ जीवात्मा कहो तो उस का मुख बताओ, आहुति कैसे

हैं। यदि शव मुर्देदेह को ही प्रेत कहो तो प्रेत के पिण्डों का पता लगाने यमलोक जाना पड़ेगा ॥

१५२ प्रश्न–संस्कारविधि पृ० ३–

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः ।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥
प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः ।

अर्थात् संस्कारों के विषय में अज्ञानी स्वार्थी मूर्ख लोगों ने जो अनेक विधान किये हैं. प्रमाणों द्वारा उस का खण्डन करके हम वेदानुकूल संस्कार विधान करते हैं। इस पर यह पूछा जाता है कि स्वार्थी अविद्वानों ने संस्कारभास्कर दशकर्मपद्धति आदि जो २ ग्रन्थ बनाये हैं, स्वा० द० ने उन का खण्डन किन २ प्रमाणों से किस २ ग्रन्थ के किस २ पृष्ठ में कब किया है ? यदि कहीं नहीं किया तो तुम लोग ऐसे मिथ्या लेख पर हरताल क्यों नहीं लगा देते ?

१५२ उत्तर–इस अन्त्येष्टि संस्कार में ही स्वामी जी ने वेदमन्त्रों द्वारा यम नाम वायु का सिद्ध कर पिण्ड प्रदानादि (जो मांस के भी देने लिखे हैं) खण्डन कर

दिखाया है । यदि आप को दिन में न दीखता हो तो रात्रि को ही संस्कारविधि के पृष्ठ २१८ । २१९ देखलें । संवत् १९४१ द्वितीयावृत्ति प्रयाग की छपी आप की शुद्ध की हुई पुस्तक इस समय मेरे सामने धरी है, जो मुं० समर्थदान के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय में छपी है । परन्तु ज्ञात हुवा कि आप ने इस का प्रूफ़ भी इन ही नेत्रों से दिन में शोधा है । अब आप उन नेत्रों पर ही हरताल धर लीजिये । मधुपर्क में गवालम्भनादि कार्य तथा अन्य संस्कारों में अनेक अवैदिक प्रथाओं का अनादर करना आप को न दीखा । संस्कारभास्कर दशकर्म में क्या "गौर्गौर्गौरालभ्यताम्" नहीं लिखा ?

१५३ प्रश्न–संस्कारविधि में लिखा है कि सब संस्कारों के आरम्भ में (विश्वानि देव०) इत्यादि पाठ मन्त्रों से ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना कोई करे । इस पर एक तो यह पूछना है कि क्या निराकार की स्तुति प्रार्थनोपासना हो सकती है । क्या निराकार वाणी का गम्य हो सकता है। (न तत्र वाग्गच्छति) में वाणी की गति का निषेध किया तो स्तुति करना बधिर के सामने व्यर्थ दुःख रोने वा अरण्यरोदन के

तुल्य व्यर्थ क्यों नहीं है । यदि मङ्गलार्थ कहो तो मङ्गलाचरण का खण्डन तुम्हारे मत में है और आदि मङ्गल मानोगे तो क्या बीच २ अमङ्गल न होगा ॥

१५३ उत्तर—वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति का खण्डन हिरण्याक्ष ने स्वराज्य में मनादी द्वारा किया था, वा आज कलियुगाचार्य भीमसेन जी ने किया है। क्या निराकार वाणी का गम्य नहीं ? इस पर—(न तत्र वाग्गच्छति) इस वचन को आप नहीं मानते ? रामस्तुति, कृष्णस्तुति जो अब आप करते हैं वह क्या शरीर अब विद्यमान हैं ? नहीं हैं, तो उन के आत्मा ही की तो आप भी स्तुति करते हैं, क्या अब भी आप आस्तिक रह गये जो "सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति" को भी भुला गये ? आप को यह किस गुरू ने पढ़ा दिया कि निराकार की स्तुति आदि नहीं हो सकती ? आप के राम, कृष्णादि देह त्याग गये हैं, उन की स्तुति, प्रार्थना बेशक वन में रोना, बहरे को दुःख सुनाने के समान है और उपासना भी करने को परलोक गमन करना पड़ेगा। हमारा जगदाधार, सर्वव्यापक घट २ वासी परमात्मा हमारी स्तुति, प्रार्थनोपासना को नहीं रोकता ॥

१५४ प्रश्न—स्वस्तिवाचन पद का अर्थ क्या है? जिस के यहां संस्कारादि कोई उत्सव हो वह पहिले (स्वस्ति-नोमि०) इत्यादि मन्त्रों को कहे वा पढ़े। यदि यही मतलब है तो स्वस्तिवचन शब्द होना चाहिये। और यदि (पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक्) इस वार्त्तिक सूत्र के अनुसार एक ख़ास कर्म का नाम ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक स्वस्ति कहलाने से होता है। प्रयोजनार्थ में विहित ञ प्रत्यय का लुक् वार्त्तिक ने दिखाया है। उस में यजमान और ऋत्विज् ब्राह्मणों के बोलने के नियत वाक्य होते हैं। यजमान कहता है (भो ब्राह्मणाः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु) तब यजमानकृत प्रेरणार्थ णिच् होने से वाचन पद बनता है। यदि शास्त्रोक्त इस विधि के अनुसार स्वस्तिवाचन का अर्थ तुम लेना चाहते हो तो क्या वैसा करते मानते हो? जब कि न वैसा करते न मानते हो तो वैसा नाम क्यों लिखा है। क्या इस का जवाब सप्रमाण दे सकते हो?

१५४ उत्तर—स्वामी जी ने संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में ही ऋत्विग्वरण लिखा है। वहां—"यथाविहितं कर्मकुरु" इत्यादि वाक्य भी लिखे हैं, उन्हें आपने क्यों

न देखा ? फिर स्वस्तिवाचन ठीक है वा स्वस्तिवचन ? इस प्रश्न को लिखते ॥

१५५ प्रश्न–क्या आरम्भ में स्वस्ति कह लोगे तो बीच में वा अन्त में अकल्याण न कूद पड़ेगा। फिर वहां भी कह लोगे तो क्या कर्म के बीच २ मिनट २ में अकल्याण न घुसेगा। तब क्या पग २ में स्वस्ति स्वस्ति ही गाया करोगे। यदि ऐसा कुतर्क मङ्गलाचरण के खण्डनार्थ तुम ने उचित समझा है तो क्या इस से तुम्हारे स्वस्ति पाठ का खण्डन नहीं हो जाता है ॥

१५५ उत्तर–मङ्गलाचरण समीक्षा में–" दं दुर्गायै नमः, बं भैरवाय नमः " इत्यादि अवैदिक मङ्गलाचरणों का खण्डन है। वैदिकों का नहीं है ॥

१५६ प्रश्न–जैसे कारीगर अन्यों को मारने काटने के लिये शस्त्र बनाता और उन से अपना भी गला काट सकता है वैसे ही तुम्हारे निर्मित कुतर्कों से प्रत्यक्ष तुम्हारा खण्डन हो जाना क्या अभी नहीं जान पाया ?

१५६ उत्तर–हां यह ठीक है। भी० से० के ये प्रश्न भी० से० को ही दुःखदायी हुवे जाते हैं ॥

१५७ प्रश्न—क्या संस्कारादि मङ्गलकार्यों में शान्ति वाचन का प्रयोग उचित है। मरणादि भयङ्कर उपद्रवों की शान्ति के लिये होने वाला शान्तिवाचन संस्कारों में कैसे उचित है। क्या तुम इस का उत्तर दे सकते हो॥

१५७ उत्तर—पौराणिक तो—"द्यौः शान्ति०" इस मन्त्र को देवप्रतिष्ठादि में भी पढ़ते हैं। आप कृपा कर, किसी ग्रन्थ का प्रमाण दीजिये कि मरणादि में ही शान्तिपाठ होता है, उत्सवों में नहीं॥

१५८ प्रश्न—सं० विधि पु० में जो १६ हाथ की यज्ञशाला बनाना लिखी सो क्या संस्कारों में बनाते हो। क्या संस्कारों का नाम यज्ञ है। १० हाथ ऊंची यज्ञशाला की छत हो २० वा १२ खम्भे उस में लगाये जावें। ऐसी यज्ञशाला के लिये क्या वेद में प्रमाण लिखा है। यदि नहीं लिखा तो यह स्वा० द० की कपोलकल्पना वेदविरुद्ध क्यों नहीं है। ऐसी कल्पित बातें लिख २ कर स्वा० द० ने संसार को धोखा क्यों दिया है॥

१५९ प्रश्न—यज्ञ देश विषय में (उन्नततमम्। समम्। अविभ्रंसि। तथा विंशत्यरत्निः शाला स्यात्तदर्धेन तु विस्तृता) इत्यादि यज्ञशाला के प्रमाणों से क्या स्वा०

द० की शत्रुता थी । अथवा श्रौत कल्पसूत्रादि की कान पूंछ जानी ही नहीं थी । सब काम प्रमाणविरुद्ध लिखने से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि स्वा० द० को मनमाना वेद विरुद्ध मत चलाना ही था । क्या इस का तुम कुछ अन्य उत्तर दोगे ॥

१६० प्रश्न—यज्ञमण्डप और यज्ञशाला को स्वा० द० ने जैसा एक लिखा है उस को सत्य मानते हो तो किसी वेदमन्त्र के प्रमाण से सिद्ध करो । अन्यथा कल्प सूत्रों से विरुद्ध स्वा० द० के लेख पर हरताल लगादो ॥

१५८ । १५९ । १६० उत्तर—धोखा देना इसी का नाम है कि लेख का आशय कुछ हो, कुछ करदें और कच्चे सूत का तागा चढ़ाकर वस्त्रों का मन्त्र पढ़ना । चिपके गुड़ की डली को " नानाविधं च नैवेद्यं " और दूब के तृण के " स्वर्ण सिंहासन " कह कर विष्णु भगवान् को धोखा देकर भी शर्म नहीं आती और कुशा का ब्रह्मा बनाकर कृताकृतावेक्षण कार्य उस को सौंपते हो, यह किस वेद शास्त्र में विधान है ? यज्ञशाला सब कोई न बनावे इस में स्वामी जी का क्या दोष है ? आप के पौराणिकपन्थी तो (मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि०)

कहकर कुवे का पानी अपने देवतों को देदेते हैं। शाला यज्ञशाला का मूल वेदमन्त्रों से स्वामी जी ने संस्कारविधि पृष्ठ १६६ । १६७ में वर्णन किया है। देखो वहां चतुष्कोण लिखा है। श्रौत सूत्रों में आप के ही लम्बे कान पूंछ हो गये हैं तभी तौ वितस्ति और प्रादेश के एक अर्थ किये थे ॥

१६१ प्रश्न—यज्ञकुण्ड का जैसा विचार स्वा० द० ने लिखा है। क्या वह मनमाना कल्पित नहीं है। यदि प्रमाणानुकूल है तो वेद के प्रमाण से सिद्ध करो। और किस २ यज्ञ में कैसा २ कुण्ड हो सो बताओ ॥

१६१ उत्तर-कुण्ड प्रमाण स्वामी जी के विरुद्ध आप किसी वेदमन्त्र में बतावें, तब वेदविरुद्ध माना जायगा, अन्यथा हम कहते हैं—भीमसेन नाम क्षत्रिय का है भीमसेन ब्राह्मण हो ही नहीं सकता ॥

१६२ प्रश्न-होम का द्रव्य कस्तूरी आदि होने में क्या प्रमाण है। क्या कस्तूरी में हिंसा नहीं है। विना हरिण के मारे जाने से कस्तूरी कैसे प्राप्त होगी, यदि न होगी तो मांस के तुल्य क्यों नहीं है। क्या किसी वेदमन्त्र में कस्तूरी का तथा अगर तगरादि का होम करना लिखा है तो वैसा प्रमाण क्यों नहीं देते ॥

१६२ उत्तर—कस्तूरी स्वयं मृत मृगों की भी मिलनी सम्भव है, अतः हिंसा नहीं। यदि कस्तूरी मांस के तुल्य है तो—(कस्तूरीतिलकं ललाटपटले०) इत्यादि स्तुतियों में क्या वैष्णव प्राणाधार कृष्णचन्द्र मांस का माथे में तिलक करते थे ? होम द्रव्यों में सुगन्धित द्रव्य न डालें तो क्या दुर्गन्धित डालें ? (सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्) वेद में उपदेश है । हां आप तो उन ग्रन्थों को माने बैठे हैं, जहां अवकीर्णी में गधे के उप......... को काट कर चौराहे में होम करना लिखा है, विना बकरे, भैंसे मारे, बदबू उठाये, आप को यज्ञ में स्वाद ही नही आता॥

१६३ प्रश्न—संस्कारवि० पृ० १६ में लिखा स्थालीपाक का विचार क्या प्रमाणानुकूल है। क्या किसी ग्रन्थ में वैसा विचार कोई दिखा सकता है । स्थाली नाम बटलोई वा डेगची का है, उस में पकाया भात आदि स्थाली पाक कहाता है, क्या मोहनभोग तथा लड्डू भी बटलोई में ही आ० समाजियों के यहां पकाये जाते हैं। यदि नहीं पकाये जाते तो मोहनभोगादि का नाम स्थालीपाक कैसे हो सकेगा, क्या खिचड़ी भी होम में चढ़ाने का कहीं लेख है। अब खिचड़ी का होम प्रामा-

णिक नहीं तो मिथ्या क्यों लिखा? "होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना" क्या (देवस्त्वा०) मन्त्र का यही अर्थ है। यदि है तो किस २ पद से क्या क्या अर्थ निकला सो बताओ॥

१६३ उत्तर—स्थालीपाक में स्वामी जी ने भात पहिले लिखा है, जो बटलोई आदि में ही बनता है और भात कड़ाही में भी बनता है और "भगोने" में भात, लड्डू, मोहनभोग आदि सब कुछ बन सकता है। आपने स्थाली का अर्थ "डेगची" लिखा है, जो "देग़" फ़ारसी का शब्द है, सो तो किसी भी ग्रन्थ में आप न दिखा सकेंगे कि स्थाली नाम देग़ची का ही है। स्थाली का अर्थ भगौना कर देने में क्या हानि है? खिचड़ी होमद्रव्यों में नहीं, इस का आप प्रमाण दीजिये। सदाचारप्रकाश भी देखा होता तो ऐसा न लिखते। सीमन्त संस्कार में पृष्ठ १८, प० १३ में—"तिलमुद्गमिश्रास्तण्डुलाः। पृ० २० मौद्गं स्थालीपाकमभिधाय" क्या तिल, मूङ्ग, चावल का स्थाली पाक खिचड़ी नहीं होगा? पारस्कर में सीमन्तोन्नयन के तीसरे सूत्र में भी स्पष्ट लिखा है:—(तिलमुद्गमिश्रꣳ स्थालीपाकꣳ श्रपयित्वा०)

हरिहर भाष्य में इस का खुलासा है। (तिलमुद्गैर्मि-श्रस्तिलमुद्गमिश्रस्त स्थालीपाकम् ओदनं चरुम्०) पुनातु का अर्थ ही पवित्र करना है। फिर (देवस्त्वा०) इस मन्त्र का अर्थ पवित्र करना क्यों नहीं मानोगे ?

१६४ प्रश्न—बाहुमात्र्यः० इत्यादि अशुद्ध संस्कृत यज्ञ पात्रविषय में कातीयश्रौत सूत्रों को बिगाड़ के कुछ का कुछ लिखा है। यदि स्वा० द० ने कल्पसूत्रों को देखा जाना होता तो ऐसा अशुद्ध क्यों लिखते। तब ऐसे अज्ञात पुरुष को महर्षि महाविद्वान् कहना मानना क्या अज्ञान नहीं है॥

१६४ उत्तर—श्रौत सूत्र को आप पतेवार लिखते तब उत्तर होता कि स्वामी जी ने बिगाड़ा या आप ने बिगाड़ा है या किसी ग्रन्थ में पाठ ही ऐसा है। पाठ के शोधक तो आप ही थे॥

१६५ प्रश्न—जिन की प्रतिकृति संस्कारविधि पुस्तक में छपायीं हैं वे यज्ञपात्र किसी आ०समाजी के किसी काम में आते वा आ सकते हैं। क्या कहीं पुरोडाशादि बनते तथा उन को कोई आ० समाजी बनवाना जानता है। शम्या, अन्तर्धानकट, शतावदान, प्राशित्रहरण,

उपवेश षडवस्त, इत्यादि पात्रों के कामों को क्या कोई समाजी जानता है ॥

१६५ उत्तर—योगशास्त्र की अणिमा महिमादि सिद्धियों का ज्ञाता यदि कोई नहीं हो तौ भी क्या पुस्तकों में से वह २ सूत्र निकालने योग्य हैं? नहीं २ कभी नहीं। आज न हों, कभी कोई आर्यसमाजी ऐसे हो सकते हैं, जो सब पात्रों को काम में ला सकेंगे और आपने कैसे जाना कि कोई आर्य इन के पात्रों के कामों को नहीं जानता है। आप शिष्य बनकर बूझेंगे तौ आप को बता दिया जायगा ॥

१६६ प्रश्न—पारस्कर आश्वलायनादि सूत्रों में ऋत्विग्व-रण का विधान जब विद्यमान है तौ उस शास्त्रोक्त विचार से विरुद्ध मनमानी ऋत्विज् वरण की रीति स्वा० द० ने क्यों लिखी है? क्या इस बात का ठीक २ सत्य उत्तर कोई दे सकता है?

१६६ उत्तर—ऋत्विग्वरण स्वामी जी ने लिखा है, चाहे संक्षेप से है। आप ही बतावें कि ऋत्विग्वरण का विधान पौराणिकपद्धतियों में पारस्कर या आश्वलायन जैसा ठीक २ अक्षरशः लिखा है। वहां भी कमी बेशी कुछ का कुछ है ॥

१६७ प्रश्न-संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में लिखा है कि " होम करने को " बैठे सब मनुष्य (अमृतोपस्तरणमसि०) आदि तीन मन्त्र पढ़ के आचमन करें। सो इन मन्त्रों से होमारम्भ में किसी आचार्य ने आचमन नहीं कहा, यही दोष नहीं किन्तु आर्थिक दोष बड़ा है। भोजनसूत्रों में भोजन के आरम्भ में आचमन करने का यह पहिला मन्त्र है और भोजनान्त आचमन में विनियुक्त दूसरा है। वैसा ही उन दोनों मन्त्रों का अर्थ है। यदि स्वा० द० को ऋषि आचार्य कोटि में मान के उन के किये विनियोगों को प्रामाणिक मानो तो स्वा० द० ने संसार को यह धोखा क्यों दिया कि हमारा कथन मनमाना नहीं है किन्तु पूर्वज ऋषियों के सर्वथा अनुकूल है॥

१६७ उत्तर-आप स्वयं ऋषिकोटि में स्वामी जी को मान चुके, फिर उन का लिखा विनियोग क्यों न मान्य हो? हां, किसी ऋषि ने यदि इन मन्त्रों को गुदप्रक्षालन में विनियोग किया होता और स्वामी जी आचमन में लिखते तब तो बेशक प्रतिकूल होता, अब तो आचमन में तो विनियोग था ही, सिर्फ़ समय-

भेद है। क्या आप ने समस्त ग्रन्थ देख लिये हैं, जो दावा करते हो कि किसी आचार्य ने आचमन होमारम्भ में इन मन्त्रों से नहीं लिखा? वैदिककर्मकाण्ड के शतशः ग्रन्थ अभी आप ने देखे भी न होंगे॥

१६८ प्रश्न—और क्या यह भी आचमन कण्ठ में कफ आजाने पर उस को हटाने के लिये है, यदि कण्ठ में कफ न हो तो आचमन करना व्यर्थ है वा नहीं? जब थूक देने से कफ निकल जा सकता है तब उस को भीतर पेट में पहुंचाने के लिये स्वामी दयानन्द का आचमन बताना क्या यह सिद्ध नहीं करता कि आर्यसमाजी थूका न करें, किन्तु जब २ कण्ठ में कफ आन पड़े, तब २ झटपट आचमन कर लिया करें॥

१६८ उत्तर—व्याख्यान देने वालों का यदि आपको दर्शन हुआ होगा तो जानते होंगे कि जब कण्ठ में खुश्की आती है, कफ खुर २ कर, गले में शब्द को रोकता है, तब थोड़ा सा जल पीने से कण्ठ साफ़ हो जाता है। उस समय थूकने से काम नहीं चलता। इसी प्रकार कफादिकी निवृत्यर्थ आचमन ही से काम होगा। खुश्की समय आप के लेख पर थूकने से काम नहीं चलेगा॥

१६९ प्रश्न–संस्कारविधि में लिखे अनुसार होम से पहिले (वाङ्म आस्येस्तु०) इत्यादि मन्त्रों से जल लेकर अङ्गों का स्पर्श क्यों करें ? क्या यह किसी वेद के मन्त्र हैं वा नहीं ? क्या नाक, कान आदि की संभाल की जाती है कि कहीं कोई कौवा कान तो नहीं लेगया ?

१६९ उत्तर–ईश्वरप्रार्थनापूर्वक अङ्गों को जल लगाना ऋषियों का मत है। क्या आप की बुद्धि को कौवा ले गया है, जो अपने आप्तोपदेश को भी नहीं मानते ?

१७० प्रश्न–सं० वि० पृ० २३ में अग्निस्थापन और समिधा चढ़ाने के मन्त्रों का विनियोग जैसा २ लिखा है क्या वैसा २ ही तुम होम वा संस्कारों के होम में करने के लिये किसी सूत्रादि ग्रन्थ के प्रमाण से दिखा दोगे अथवा कहीं किसी वेदमन्त्र में ऐसा लिखा है ? यदि कहीं भी ऐसा नहीं लिखा तो स्वा० द० का ऐसी आज्ञा लिखना वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ?

१७० उत्तर–अग्निस्थापन, समिधादान का विधान, विनियोग इन मन्त्रों का हम यज्ञ में दिखा सकते हैं और इन मन्त्रों के अर्थ से भी पाया जाता है। ऐसी लघु (छोटी) शङ्का आप के मुख से निकलनी उचित नहीं थी। आप वैदिक ग्रन्थों को देखें ॥

१७१ प्रश्न—चारों वेद के सब सूक्तों और सब ब्राह्मणस्थ श्रुतियों की एक ही सम्मति है कि गृह्यश्रौत सब होमों तथा यज्ञों में आघारों की दो आहुति सब से पहिले होतीं और उस के बाद दो आहुति आज्य भागों की होती हैं पर संस्कारविधि पृ० २५ में इस से विरुद्ध प्रथम आज्यभागाहुति लिखीं तत्पश्चात् आघाराहुति लिखी हैं। क्या कोई समाजी जन्मान्तर में ऐसा प्रमाण वेदादि शास्त्रों का दिखा सकता है और क्या इस से यह सिद्ध नहीं होता कि स्वा० द० को या तौ इतना बोध ही न था कि होम के सम्प्रदाय में पहिले पीछे किस २ क्रम से, कौन २ आहुति होनी चाहियें ? यदि बोध होना मानो तौ मानना पड़ेगा कि सभी अंशों में उन को मन माना वेदविरुद्धमत चलाना था॥

१७१ उत्तर—स्वामी जी ने भाषा तक में भी ब्रैकट में " आघारावाज्यभागाहुति " लिखा है, इसी से सिद्ध है कि प्रथम आघाराहुति हों, पीछे आज्याहुति हों, परन्तु संशोधकों के अज्ञान को स्वामी जी क्या करें, जिन्हें इतना भी बोध न हो कि यदि स्वामी जी को आज्याहुति प्रथम और आघार पीछे बतानी स्वीकृत

होती तो " आज्याघार " शब्द लिखते । आघार शब्द प्रथम न लिखते ॥

१७२ प्रश्न—पृ० २६ में स्विष्टकृत् आहुति के पश्चात् प्राजापत्याहुति लिखी सो भी सब ग्रन्थों से विरुद्ध है। प्राज्यापत्य होम के पश्चात् सर्वत्र ही स्विष्टकृत् आहुति का नियम है। क्या कोई समाजी स्वा० द० के इस लेख को शब्दप्रमाणानुकूल सत्य ठहराने का दम रखता है ॥

१७२ उत्तर—सब ग्रन्थों का एक ही क्रम हो, यह नियम सनातनधर्म में भी नहीं है। जितनी पद्धति होती हैं, सब में कुछ न कुछ भेद अवश्य होता है। नमूने को देखो सदाचारप्रकाश नवलकिशोर प्रेस, द्वितीयावृत्ति सं० ९१ का छपा, पृ० ९१, विवाहप्रकरण में—

ओं प्रजापतये स्वाहा इदं० इति मनसा। इन्द्राय स्वाहा इद० इत्याघारौ सोमाय स्वाहा इद०। इत्याज्यभागौ॥

फिर व्याहृति आहुति लिखीं हैं। फिर त्वन्नो० इत्यादि ५ मन्त्र हैं, वह भी उलट पुलट हैं, बस जब आप यह दावा नहीं कर सकते कि सब पद्धति सनातनी

तौ एक ही क्रम की हैं तब आप स्वामी जी की संस्कार-विधि पर ऐसे आक्षेप किस मुख से करते हैं ? फिर संस्कारविधि के तौ संशोधक भी आप ही थे ॥

१७३ प्रश्न—सं० वि० पृ० २७ में लिखी (अग्ने त्वन्नो०) इत्यादि मन्त्रों से आठ आहुति स्वा० द० ने सब कर्मों में मानी हैं। सो भी पारस्कर गृह्यादि से यह विरुद्ध है। क्योंकि विवाहादि किसी २ ख़ास २ कर्म में आठ अन्यत्र सर्वप्रायश्चित्त की पांच पांच आहुति आचार्यों ने मानी हैं। क्या समाजी लोग सर्वत्र आठों करने के लिये किसी आचार्य का प्रमाण दे सक्ते हैं ॥

१७३ उत्तर—(अग्ने त्वन्नो०) इस प्रकार कोई मन्त्र भी नहीं लिखे। आप की विपरीत बुद्धि ने दृष्टि भी विपरीत करदी है, (त्वन्नो अग्ने०) ऐसा पाठ है। रही पारस्करादि गृह्यों की विरुद्धता सो भी आप की ही दृष्टि का दोष है। संस्कारविधि का पाठ विना पढ़े यह प्रश्न घर घसोटा है। देखो पृष्ठ २८ छठी वार छपी, सं० १९६३, दयानन्दाब्द २३ की सं० वि०। इन्हीं मन्त्रों से पूर्व "अष्टाज्याहुति" में "निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गलकार्यों में ८ आहुति देवे। परन्तु किस २ संस्कार

में कहां २ देनी चाहिये यह विशेष बात उस २ संस्कार लिखेंगे" । यह पाठ संस्कारविधि में छपा है, क्या आप ने नहीं पढ़ा ? बस प्रश्न करते समय ' परन्तु ' से आगे अक्षर देखते २ दिन निकल आया होगा ? नेत्र कुमुदिनी बन्द हो गई होंगी ? भला जब ऐसे बुद्धिसागर दीर्घदृष्टि लोग स्वामी जी के ग्रन्थों पर प्रश्नप्रहार करें तब क्या ठिकाना रहेगा ? हां, आप तो विवाहादि में आठ आहुति बताते हैं, परन्तु सदाचारप्रकाश में ५ ही विवाहप्रकरण में लिखी हैं । अब यही शस्त्र उस पर चलाइये ॥

१७४ प्रश्न—जब कि आश्वलायन वा पारस्करगृह्य सूत्रादि किसी के भी अनुसार स्वा० द० का गर्भाधानादि एक भी संस्कार नहीं है तब संस्कारों के आरम्भ में कहीं २ आश्वलायन पारस्करगृह्यसूत्रादि के कोई २ सूत्र प्रमाण साधारण मनुष्यों को धोखा देने के लिये क्यों लिखे गये हैं ॥

१७४ उत्तर—स्वामी दयानन्द के लिखे सब संस्कार गृह्यसम्मत हैं । आप जैसे सुलोचनों के लिखे कुछ नहीं होता ॥

१७५ प्रश्न—स्वा० द० के मत से विवाह और गर्भाधान दोनों संस्कार एक ही दिन एक ही रात्रि में एक ही साथ होने चाहियें। ऐसी दशा में विवाह का एक अङ्ग गर्भाधान हो सकता है। तब एक संस्कार और घट जायगा। क्या कोई समाजी विवाह गर्भाधान दोनों एक ही रात्रि में करने का प्रमाण कहीं दिखा सकता है॥

१७५ उत्तर—स्वामी दयानन्द जैसे विरक्त पुरुष ने विवाह पद्धतियों के गृह्यसूत्रों में (यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफम्) इत्यादि मन्त्र देखे, तब ऐसा भ्रम हो जाना कुछ बड़ी बात नहीं है परन्तु आप जैसे विवाहे बरात गये गृहस्थों ने भी शोधन न किया, यह आश्चर्य है। क्या आप ने स्वामी जी को इस बात को जताया था ? यह शपथ-पूर्वक कह सक्ते हो कि आप के कहने से स्वामी जी न माने हों या उन के ही क़लम से यह लेख लिखा गया है ? वह कापी दिखा सकते हो ? जब आप ही लिखने वाले थे तब इस समय यह प्रश्न शोभा आप को नहीं देता है। यह स्याही मुख तक पहुंचेगी, यह ख़बर नहीं थी। आप का मुख तो इस योग्य भी नहीं है क्योंकि ८ वर्ष की गौरी कन्या का विवाह करके ४ थे

दिन सम्भोग काल की क्या दशा होगी। आप के मत में ८ वर्ष की कन्या के विवाह से ही स्वर्ग मिलता है तब स्वर्ग से लटक पड़ोगे तौ भी गृह्यों में अष्टवर्षा कन्या विवाह सिद्ध न कर सकोगे ॥

१७६ प्रश्न—सं० वि० पृ० ३७ में लिखी (अग्नये पव०) इत्यादि आहुति गर्भाधान के समय देने की आज्ञा किस गृह्यसूत्रादि ग्रन्थ में है। क्या कोई समाजी इस के लिये प्रमाण दे सकता है। तथा क्या बता सकता है कि स्वा० द० ने ऐसी मनगढन्त क्यों की है ॥

१७६ उत्तर—क्या सृष्टि भर के ग्रन्थ आप ने अव- लोकन कर लिये जो आप यह दावा करते हैं कि (अग्नये पव०) इत्यादि मन्त्रों का विधान गर्भाधान समय नहीं है। या यह बताते कि इन मन्त्रों से अमुक काम करना चाहिये था और लिख दिया होम तब तो कुछ ठीक भी था। यहां कुल ६ आहुति सं० वि० में लिखी हैं, जिन में ७ वीं प्राजापत्य ६ ठी स्विष्टकृत् तौ आप को स्वीकृत होंगी क्योंकि यह तौ अन्य पद्धति और गृह्यों में भी मिलेंगी ही, केवल ४ अधिक हैं सो अधिकस्या- धिकं फलम् ॥

१७७ प्रश्न—चतुर्थी कर्म के समय कन्या के मस्तक पर जो अभिषेक पारस्करगृह्य में समन्त्रक लिखा है उस को स्वा० द० ने सं० वि० में क्यों नहीं लिखा। क्या कोई समाजी इस का सत्य उत्तर दे सकता है॥

१७७ उत्तर—सब पद्धतिकार एक ही प्रकार मन्त्र विनियोग नहीं करते हैं। अतः यहां भी अभिषेक समन्त्रक नहीं लिखा गया है। बहुतसी पद्धतियों में अग्नि स्थापन का मन्त्र नहीं है, तीनों समिधा तूष्णीं अग्नि पर छोड़नी लिखी हैं, स्वामी जी ने सं० वि० में मन्त्र लिखे हैं। इस का क्या कोई सनातनी सत्य २ उत्तर देगा?

१७८ प्रश्न—चतुर्थीकर्म के समय वर अपनी वधू को चार ग्रास चरु अपने हाथ प्राशन करावे। ऐसा पारस्कर गृह्य में लिखा है। सो यह विचार गर्भाधान में क्यों छोड़ा गया। क्या स्वा० द० के मत में गर्भाधान से पृथक् चतुर्थी कर्म कर्त्तव्य है तो कब। क्या ग्रन्थों का लेख आचार्यों के प्रमाण सब पोपलीला हैं तब मनगढ़न्त के सब लेख पोपलीला क्यों नहीं हैं॥

१७८ उत्तर—जब तक पारस्कर का सूत्र और पता न दें तब तक हम को उत्तर की आवश्यकता नहीं।

चतुर्थीकर्म विवाह का ही एक उत्तर अङ्ग है। स्वामी जी ने गर्भाधानसंस्कार में ग्रामों पर कुछ नहीं लिखा है। हो तौ दिखावें ॥

१७९ प्रश्न—सं० वि० पृ० ४१ में स्त्री पुरुष के संयोग का व्याख्यान खोल कर लिखा गया है। क्या बाल ब्रह्मचारी स्वा० द० इस विषय के मर्म को ठीक २ जानते थे। क्या अनुभव किया था। अनुभव किये विना जान लिया तो अनुभव के पश्चात् ज्ञान होने का नियम कहां रहा। और ऐसा लिखते संन्यासी को संकोच वा लज्जा शर्म क्यों नहीं आई ?

१७९ उत्तर—स्त्री पुरुष के संयोग के मन्त्र मात्र पृष्ठ ४१ में सं० वि० में छपे हैं, जिन का भाषा में अर्थ भी नहीं किया गया है। फिर स्वामी जी का इस में क्या दोष है (विष्णुर्योनिं कल्प०), यह ऋग्वेद सं० के (रेतो मूत्रं विजहाति०) इत्यादि यजुर्वेद सं० के—(यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा ते०) इत्यादि अथर्व सं० के मन्त्र हैं। इस में खोलना बान्धना स्वामी जी ने नहीं किया। वेदभगवान् ने किया है। क्या आप वेदों पर भी हरताल धरने का यश लूटेंगे ॥

१८० प्रश्न–पुंसवन संस्कार पृ० ४५ में (आ ते गर्भो) इत्यादि मन्त्रों से होम लिखना किसी प्रमाणानुसार है वा मनमाना। यदि समाजियों में कोई संस्कार का कान पूंछ कुछ समझता हो तौ उक्त मन्त्र का अक्षरार्थ करके देखे कि यह मन्त्र पुंसवन में घटता है वा नहीं। यदि पुंसवन के होम में इस का विनियोग सत्य कहै तौ गृह्यसूत्र का प्रमाण दिखावे॥

१८० उत्तर–संस्कृत के लम्बे कान, लम्बी पूंछ आप ही की प्रसिद्धि है। विना सींग, कान, पूंछ वालों की गणना में आप ही रहिये। रही मन्त्रार्थ की बात सो तौ विवाह समय के मन्त्रों में गर्भाधान के समान अर्थ वाले मन्त्र मौजूद हैं, फिर पुंसवन संस्कार तौ गर्भपुष्टि के लिये है ही, उस के तौ अर्थ में ही भासता है, उस में (आ ते गर्भो०) इत्यादि मन्त्र विनियोग में हानि नहीं हो सकती है और इसी मन्त्र से अगला मन्त्र (अग्निरैतु०) तौ विवाह के अभ्यातनहोम के आगे आज्यहोम का ही प्रथम मन्त्र है। एक २ मन्त्र कई २ संस्कारों में आता है। क्या सब अर्थ ही लगते हैं?

१८१ प्रश्न–सं० वि० पृ० ४४ में लिखे (पुमांसा०)

इत्यादि मन्त्रों का वास्तव में क्या यही अर्थ है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये और क्या स्त्री भले ही वीर्यवती न हो। आ० समाजी अपने हृदय पर हाथ धरके कहें कि क्या स्वा० द० का यह लिखना सत्य है?

१८१ उत्तर—आप की तिर्यक् गति की भी क्या प्रशंसा करूं। पृष्ठ ४१ से ४५ फिर ४४ पृष्ठों को देखने लगे, अस्तु। (पुमांसौ०) इत्यादि दो मन्त्र सामवेद और तीन मन्त्र अथर्ववेद के कुल पांचों का सारांश बेशक यही है, जो संस्कार विधि में लिखा है। ख़ास कर (पुंसि वै रेतो०) इस मन्त्र से तौ बिलकुल ही पुरुष का वीर्यवान् होना ही पाया जाता है। स्त्री का वीर्यवती होना आप के मत में होगा। पुरुषों में रज होगा? पर भूल से रज, वीर्य विपर्यय मुख से निकल पड़ा। ज़रा अपने हृदय पर हाथ धर कर देखो कि आप का स्त्री को वीर्यवती लिखना क्या ठीक सत्य है?

१८२ प्रश्न—यदि कहो कि इन पारस्कर आश्वलायनादि सूत्र ग्रन्थों में मांसादि के विषय की अनेक बातें हैं जिस से वे सर्वांश में मान्य नहीं हो सकते तौ इतिहास पुराणादि में भी अनेक प्रमाण तुम्हारे अनुकूल

नहीं हैं। तब पुराणों से शत्रुता क्यों मानते हो। अब पुराणादि के तुल्य सूत्र ग्रन्थों की भी कोई २ बातें जो तुम्हारे कल्पित नवीनमत के अनुकूल हैं वे ही मान लेते हो तब सूत्र ग्रन्थ मानने का धोखा सर्वसाधारण को क्यों देते हो॥

१८२ उत्तर–क्या पारस्करादि के मांस प्रकरण को आप ठीक सत्य मानते हैं? तो क्या मधुपर्क और अन्त्येष्टि के (गामपि घ्नन्ति०) आदि पाठ को भी यथाविधि कभी काम में लाये हो॥

१८३ प्रश्न–सं० वि० पृ० ४७ में लिखा है कि पति अपनी पत्नी के केशों में सुगन्धित तैल डाले। सो क्या इस में कोई वेद का प्रमाण है वा किसी गृह्यसूत्रादि में ऐसा लिखा है। अर्थात् ऐसी बात कहीं भी नहीं लिखी किन्तु इतर फुलेल लगाने वाले ऐयाश आ० समाजियों की प्रसन्नता के लिये स्वा० द० ने यह मनगढ़न्त लिखी है। क्या कोई आंखों वाले समाजी इस उक्तांश को किसी मान्य प्रमाण से सिद्ध करने का साहस रखते हैं॥

१८३ उत्तर—सदाचारप्रकाश पृ० २१ में भी लिखा है कि पति अपने हाथ से स्त्री के केशों की मांग बनावे। कंघी कुशा उदुम्बर के काष्ठ से मांग बनावे। यही सब आचार्यों ने माना है। पारस्कर सीमन्त सं० सूत्र ४ में भी (सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्र्येण्या शलल्या वीरतरशङ्कुना०) इत्यादि पाठ से सिद्ध है कि पति अपने हाथ से केशों का बाहै। तब तैल डालना आपको क्यों चुभा। फिर क्या ३ मास के खुले केशों को विना तैल डाले मांग बाही जा सकती है? इस तैल डालने में ऐयाशी की कौन बात है, यदि है तो मांग बान्धने बाल सुलझाने में भी ऐयाशी होगी, उस में आप भी हैं॥

१८४—सं० वि० पृ० ५१ में (कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात्०) इत्यादि आश्वलायन सूत्र लिख कर आगे स्वा० द० लिखते हैं कि "जब पुत्र का जन्म हो तब दायी आदि स्त्री लोग जरायु आदि पृथक् कर बालक को शीघ्र शुद्ध कर पिता को देवें तब पिता जातकर्म करे" सो क्या यह स्वामी द० का लिखना आश्वलायनादि के प्रमाणानुसार है। आश्वलायन कहते हैं कि पैदा हुवे बच्चे को अन्य किसी के छूने से पहिले

पिता जातकर्म करे । और स्वा० द० कहते हैं कि पहले दायी आदि शुद्ध करे। सो क्या यह स्वा०द० का लिखना आश्वलायन से सर्वथा विरुद्ध नहीं है। जब स्वा० द० को ऋषियों से विरुद्ध अपना मनमाना ही मत चलाना था तो अपने मत से विरुद्ध प्रमाण को क्यों लिखा। क्या संसार को धोखा देने की बात यह नहीं है ॥

१८५–पारस्कर गृह्य सू० १ । १६ (जातस्य कुमारस्या च्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननमायुष्ये करोति) उत्पन्न हुवे बच्चे का नाल काटने से पहिले पिता मेधाजनन आयुष्य संस्कार करे । तथा मनुस्मृति अ० २ में लिखा है कि– (प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसोजातकर्म विधीयते) नाल-च्छेदन से पहिले उत्पन्न हुवे पुत्र का जातकर्म संस्कार करना शास्त्रविहित है। इसी प्रकार सब शाखा के सब गृह्य सूत्रों और सब स्मृतियों की एक राय है कि नालच्छेदन से पहिले जातकर्म होना चाहिये । पर एक स्वा० द० ने सं० वि० पृ० ५१ में नालच्छेदन के बाद जातकर्म लिखा है। क्या कोई भी आर्यम्मन्य इस कल्पित मन्तव्य को किसी भी वेदादि प्रमाणानु-कूल बता सकता है ॥

१८४ । १८५ उत्तर-ज़रा बुद्धि को शान पर रखवा कर नेत्र खोल कर संस्कारविधि को देखें जहां स्पष्ट लिखा है कि (पिता बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से स्नान करा० इत्यादि) बस नाल छेदन से पूर्व दायी आदि स्त्रियां बालक के शरीर पर लपटे हुवे जरायु को पृथक् करदें का तात्पर्य स्पष्ट है कि रक्त भरे बालक को पिता गोद में न लेवे जरायु और नाल एक ही नहीं होते हैं । कभी गाय भैंस भी ब्याते होंगे जेल पीछे तक गेरते हैं नाल बच्चे के साथ ही नाभि में लगा होता है । जरायु=जेर और नाड़ी= नाल को एक समझने वाले बुद्धिविशारद जहां संस्कारों में स्वा० द० स० जैसे महाविद्वान् की भूल बताते नहीं शर्माते ऐसे सनातनधर्म का बेड़ा बीच धार में कैसे तरेगा । क्या कोई भी विद्वान् इस भीमसेनी भूल को (जेल=नाल का एक होना) वेद शास्त्र के अनुकूल सिद्ध कर सकेगा ? कूद चलने से ऐसे टांग टूटती हैं । परन्तु इन्हें लज्जा कहां है । एक बार प्रादेश को वितस्ति बता कर भी कर्मकाण्ड की दुम कटा चुके हैं । यदि

कर्मकाण्ड की दुम दबा के पारस्कर का हरिहर भाष्य भी देख लेते तौ भी ऐसी भूल न करते (जरायुवेष्टितं गर्भवेष्टनम्०) जातकर्म सूत्र २ का भाष्य ॥

१८६ प्रश्न—नालच्छेदन के बाद सूतक लग जाता है। इसी लिये किसी सूत्रादि में जातकर्म के साथ होम नहीं लिखा है। इस से होम लिखना स्वा० द० की मनमानी कल्पना है । क्या जातकर्म में नालच्छेदन के बाद होम करने का प्रमाण कोई समाजी दे सकता है ॥

१८६ उत्तर—नालच्छेदन के पीछे सूतक ही में दशों दिन तक होम करने के दो मन्त्र सब ग्रन्थों में मिलते हैं। सदाचार-प्रकाश के पृष्ठ ९५ को देखिये । जातकर्म (द्वारदेशे सूतिकाग्निमुपसमाधाय०) जो दो मन्त्र (शण्डा-मर्का०) इत्यादि संस्कारविधि में हैं वही सदाचार-प्रकाश में मौजूद हैं। वही पारस्कर सूत्र २३ जातकर्म में देखो । यदि (सूतके दानहोमादि स्वाध्यायादि च संत्य-जेत्) का अड़गा आप लगावें तब तौ आज कल नाल च्छेदन पीछे पत्रा दिखाते समय के टके परौत और गणेशपूजा भी उड़ जायगी ॥

१८१ प्रश्न–जब कि ऋषि आचार्यों के कथन को तुम स्वतःप्रमाण नहीं मानते । तो गृह्यसूत्रोक्त वाक्यों को स्वा० द० ने मन्त्र क्यों लिखा । क्या तुम लोग उन ग्रन्थों को वेदवत् प्रमाण मानते हो ॥

१८१ उत्तर–हम (गृह्यसूत्र) वेदवत् स्वतःप्रमाण नहीं मानते हैं । मन्त्र लिखने मात्र से न वेद हो सक्ते हैं क्योंकि कोई ऐसा प्रमाण नहीं कि मन्त्र कहने लिखने से सब मन्त्र वेद ही हो जाते हैं । पुराणों में लिखा है (इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य), (अनादिनिधनोदेवःशङ्खचक्रगदाधरः) तो क्या यह वेद हो गया ?

१८८ प्रश्न–अकारान्त विषमाक्षर स्त्री का नाम रखने के लिये क्या कोई वेद का प्रमाण है । यदि नहीं है तो ऐसा नाम रखने का लेख तुम्हारे मत में वेदविरुद्ध क्यों नहीं है । और कन्या का विषमाक्षर नाम रखने में युक्ति क्या है ? । ऐसा न करने पर हानि क्या है ॥

१८८ उत्तर–पारस्कर गृह्यसूत्र क० १७ । ३ अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम् ३ अर्थात् अयुग्म=विषम अक्षर आकारान्त तद्धितान्त नाम स्त्री का होना चाहिये? क्या आप ने गृह्यों को मानना छोड़ दिया ?

१८९ प्रश्न—ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण गुणकर्मानुसार मानते हो तो बालकों के शर्मान्त वर्मान्तादि नाम क्यों कहे गये। शर्मान्तादि नाम रखने की आज्ञा से उन २ का जन्म से ब्राह्मणादि होना सिद्ध क्यों नहीं होता?॥

१८९ उत्तर—जैसे पारस्कर गृह्य में (अयु० स्त्रियै तद्धितम् ३) इस सूत्र में 'तुर्त की जन्मी कन्या को स्त्री कह कर निर्देश किया है, कन्या शब्द से नहीं। इसी प्रकार भाविनी संज्ञा मान कर शर्म्मान्तवर्मान्त नाम धरै क्योंकि नाम धरना पिता का काम है, वह अपने वर्ण के अनुसार नाम धरै। भाविनी संज्ञा ऐसी होती है जैसे खोदते ही समय कूप खोदना, भट्टी खोदना, खत्ती खोदना कहते हैं, तयार होने पर जो नाम होगा वही नाम आरम्भ से ही धरा जाता है, चाहे वह तयार न होने पावे और कुवा खोदने से पानी न निकले बीच में विघ्न हो जाय तो खत्ती ही बनालें। ऐसे ही मनोभिलषित वर्ण नाम धरैंगे, चाहे बीच में विघ्न होने ब्राह्मण शूद्र ही रह जावे। तथा एक स्त्री पटवारी की हो तब पटवारन, वही क़ानूनगो हुवा स्त्री भी क़ानूनगोनी, डिपुटी होने पर डिपुटन, तहसीलदार हो तो

तहसीलदारनी, वही एक स्त्री अनेक नाम्नी होती चली जाती है, पति के अनुरूप नाम होता है। इसी प्रकार बालक भी पिता के वर्ण का नामधारी होता है, आगे उस का कर्म रहा ॥

१९० प्रश्न-पुरुषों के दो वा चार अक्षरों के नाम न रख के यदि तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे तो दोष क्या है। क्या तुम्हारे मत से तु० रा० आदि नाम वेदविरुद्ध नहीं हैं ॥

१९० उत्तर-पारस्कर गृह्यसूत्र में १७। २ (द्व्यक्षरं चतुर०) पुत्र का २। ४ अक्षर का नाम धरना लिखा है। सो ही स्वामी जी ने भी लिखा है। विषमाक्षर नाम धरने में भी दोष नहीं है। जैसे जैमिनि, भरत, पूर्व भी थे, सीता, माद्री भी थीं। जैसे मनु में ब्राह्मण को श्वेत रक्त लिखा है आप भी मानते हैं और आप पिता पुत्र सब काले हैं। तो क्या आप ब्राह्मण नहीं या मनु जी को अशुद्धि है ॥

१९१ प्रश्न-दशवें वा ११ ग्यारहवें दिन बालक का नाम क्यों रक्खें, क्या ऐसा वेद में लिखा है। जिस दिन बालक पैदा हो उसी दिन वा अगले दिन नाम-

करण कर लेने में दोष ही क्या है। जब मृतक की शुद्धि उसी दिन हो सकती है तब सूनक के लिये दश दिन क्यों मान लिये गये। क्या इस के लिये कोई प्रमाण है॥

१९२ उत्तर—पारस्कर गृह्य सूत्र १ नामकरण संस्कार में (दशम्यां०) स्पष्ट दशवें दिन नाम धरना लिखा है। आप जैसों को सामर्थ्य है उसी दिन नाम धरलें या अगले दिन परन्तु सं० विधि तो गृह्यानुकूल ही है। मृतक में गृह की शुद्धि भी मनु के अनुसार १० दिन पीछे ही होती है। हां स्वामी जी ने जो लिखा है वह पिण्डप्रदानादि से उस प्रेत का कुछ सम्बन्ध नहीं है यह बताया है। गृहशुद्धि का विरोध नहीं है॥

१९२ प्रश्न—नामकरण में स्वा० द० ने लिखा है कि "उस की माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर उस का मस्तक उत्तर दिशा में रखके बालक को पिता के हाथ में देवे" यह क़वायद स्वा० द० ने आर्यो से क्यों कराई है। ऐसा करने से क्या प्रयोजन है। क्या ऐसा वेद में लिखा है। क्या यह पोपलीला नहीं है॥

१९३ प्रश्न–यदि यहां पूर्वाभिमुख बैठने आदि के नियम को ठीक मानते हो तो सन्ध्योपासनादि के समय पूर्वादि दिशा में मुख करने के नियम को मानने में [illegible] को अजीर्ण क्यों हो जाता है । क्या इस पर वेद का प्रमाण दे सकते हो ॥

१९२।१९३ उत्तर–पूर्वाभिमुखादि का बैठना सब संस्कारों में निर्दिष्ट है । अन्य होता आदि भी यथास्थान बैठ सकें घपला न हो । सन्ध्या तो एकान्त जलाशय के तट पर करते हैं । यदि जलधारा पश्चिम में हो तो पूर्वाभिमुख कैसे बैठे । इत्यादि कष्ट होने से कोई ख़ास नियम नहीं बताया है । यथा-सुख बैठे ॥

१९४ प्रश्न–जिस तिथि और जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुवा हो, उस तिथि और नक्षत्र के नाम से तथा तिथि और नक्षत्र के देवता के लिये आहुति क्यों देनी चाहिये ? क्या ऐसा वेद में लिखा है । क्या इस से देवता पक्ष का मानना सिद्ध नहीं होता । और क्या तुम बता सकते हो कि इन तिथि नक्षत्रों के ब्रह्मादि देवता कौन हैं ॥

१९४ उत्तर–तिथि, नक्षत्र, देवता विषय निरुक्तादि में है। देवता भी पृथ्वी अन्तरिक्ष द्युस्थानीय ३ प्रकार के हैं। उन २ के लिये आहुतियां ऐसे ही हैं जैसे सूर्यादि को, इस में शङ्का ही नई क्या है ?

१९५ प्रश्न–जब अपने २ कर्मों के अनुसार सब को फल मिलता है तब बालक को आशीर्वाद व्यर्थ क्यों देते हो। क्या आशीर्वाद देने से उस के कर्म अच्छे हो जाते हैं। यदि नहीं हो जाते तो तुम्हारे मत में सभी को आशीर्वाद देना व्यर्थ क्यों नहीं। यदि आशीर्वाद से अच्छा फल मिलता मानो तो कृतहान अकृताभ्यागम दोष क्यों नहीं है॥

१९५ उत्तर–आशीर्वाद आत्मा की प्रसन्नता का चिन्ह है। कर्मफल तो होता ही है। नित्य पालागन करने वाले अनेक पापियों को पौराणिक पाधा " जय हो " कहने वाले क्या पाप की जय मनाते हैं। या ईश्वर के न्याय पर हरताल जमाते हैं॥

१९६ प्रश्न–चौथे महीने में बालक का निष्क्रमण संस्कार क्यों करे। क्या ऐसा वेद में लिखा है। नहीं लिखा तो वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ? ... किसी महीने

में वा पहिले महीने में बालक को बाहर निकाले तो क्या दोष है । और यहां भी स्त्री से वैसी क़वायद क्यों कराई गई ॥

१९६ उत्तर—यदि आपने पारस्कर भी देखा होता तो ऐसी लघुशङ्का का रोग आप को न लगता । " चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका " ५ क० १७ पा० गृ० संस्कारविधि में भी गृह्यों का हवाला दिया है । तब क्यों ऐसी लघु शङ्काओं के ढेर से पोथी लिख अशुद्धि की गन्ध फैलाते हैं ॥

१९७ प्रश्न—पुत्र के शिर का स्पर्श करना, उस के कान में मन्त्र जपना, उस से कहना कि तू मेरे अङ्ग २ से उत्पन्न हुआ, मेरा आत्मा है, तेरा गुप्त नाम वेद है। क्या इन बातों को बालक सुनता समझता है । यदि नहीं सुनता समझता तो अन्धे को शीशा दिखाने के तुल्य व्यर्थ क्यों नहीं है ॥

१९७ उत्तर—यह प्रश्न पारस्करादि गृह्यसूत्रकर्ता पूर्वाचार्य्यों से करने जाइये, यदि वह उत्तर न दे सकेंगे तब आर्यसमाजी देंगे । सब पूर्वाचार्य्यों ने जो लिखा है सो ही सं० वि० में है । आम की गुठली को सिन्दूर, सौंफ़, अजवायन की पुट देने से उस गुठली के अंकुरों

में समा जाती है, फिर पचासों वर्ष पीछे भी प्रत्येक फल में वही रंग वही गन्ध रहता है, यद्यपि जिस बीज में पुट दिया था वह मिट्टी में मिल गया था। इसी प्रकार संस्कारों की सूक्ष्म बातें हैं, आप जैसे मोटी बुद्धि वाले क्या समझें। देखो पारस्कर गृह्यसूत्र ५। १६ [अथायुष्यं करोति नाभ्यां वा दक्षिणकर्णे जपति] [तथा १७। १९ स यस्मिन्देशे जातो भवति तं देशमभिमन्त्रयते "वेद ते भूमि०"] इत्यादि में बालक के नाभि कान में जपना पैदा होते ही लिखा है। जहां पैदा हो उस भूमि को छूकर भी अभिमन्त्रण लिखा है। यह सब प्रमाण प्रथमकाण्ड में मिलेंगे और [अथास्य मूर्द्धानं] ३। १८॥

१९८ प्रश्न—[यद्दश्चन्द्रमसि कृष्णां०] यह मन्त्र क्या किसी मूल वेद का है। यदि सौत्र मन्त्र है तो वेदविरुद्ध मन्त्र तुम ने क्यों लिखा। और इस मन्त्र से निष्क्रमण संस्कार में स्वा० द० ने चन्द्रमा को अर्घ देना लिखा है। क्या इस कृत्य को आर्यसमाजी लोग ठीक मानते हैं। यदि ठीक मानते हैं तो सन्ध्योपासन के समय सूर्यनारायण को अर्घ देने में आर्यसमाजियों का पेट क्यों पिराता है॥

१९८ उत्तर—यह मन्त्र संहिता का न हो तौ भी इस में साइंस का उपदेश है और स्त्रियों को इस पर ध्यान दिलाया जाय तौ बड़ा उपदेश है। इस की व्याख्या करें तौ बहुत पृष्ठ चाहियें परन्तु इतना तौ आप को भी मोटी बुद्धि से दीख सकता है कि जो चन्द्रमा में कृष्णवर्ण है यह भूभाग है। [शेष जल भाग है] जल से चन्द्र का बहुत सम्बन्ध है। बालक चन्द्रमा को देख आनन्दित होते हैं क्योंकि कोमलाङ्ग बालक का कोमल प्रकृति चन्द्रमा जल को देख प्रसन्न होना स्वाभाविक बात है। इत्यादि कारणों से लिखा होगा। आप तौ संशोधक थे, निकाल क्यों न दिया था या जब यह ज्ञान न था कि यह वेदविरुद्ध सूत्रविरुद्ध है॥

१९९ प्रश्न—छठे महीने में ही अन्नप्राशन क्यों करे। क्या इस के लिये वेद का प्रमाण दे सकते हो। यदि दांत उगने के कारण मानो तो दातों से अन्न नहीं चबाया जाता किन्तु डाढ़ों से अन्न चबाया जाता है। इस लिये जब डाढ़ें उगा करें तब २ उस २ बालक का अन्नप्राशन युक्ति से होना चाहिये। ऐसी दशा में छठे महीने का नियम करना खण्डित क्यों नहीं हुआ?

अब रहा हमारे मत का विचार सो [षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि०] इत्यादि प्रमाण हम को निर्विवाद निर्विकल्प मन्तव्य हैं। इस से कोई दोष नहीं है॥

१९९ उत्तर—स्वामी जी ने सभी संस्कार गृह्यों के आधार पर मास निर्णय कर लिखे हैं। यह भी ऐसे ही है। जो अन्न चटाया जाता है उसे दाढों से चबाने की तो आवश्यकता नहीं होती। हां छठे मास में ही जठराग्नि अन्न पचाने योग्य होती होगी। यही समझ सूत्रों में लिखा है। सूत्रकार आप जैसे आंख मीच मानने वाले न थे। देखो सुश्रुत अ० १० सू० ६४ षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेत॥

२०० प्रश्न—भात रांधने और आहुति देने की कल्पना जैसी स्वा० द० लिखते हैं। वैसी ज्यों की त्यों कल्पना क्या तुम किसी ग्रन्थ में दिखा सकते हो। जब कि पारस्कर गृह्यादि के अनुसार संस्कारविधि लिखने से स्वा० द० पर और भी कम आक्षेप हो सकते थे तब उन्हों ने सर्वत्र अपनी मनमानी कल्पना क्यों चलाई? क्या इस से स्वा० द० का कल्पित नया मत चलाना सिद्ध नहीं होता॥

२०० उत्तर—भात रांधने में तो स्वामी जी ने पारस्कर के विरुद्ध कल्पना नहीं की, जो की हो सो बताओ। हां स्वामी जी ने केवल चावल घृत लिखा है। पारस्कर गृ० में जो आगे गड़बड़ मांस की लिखी है कि यदि बालक की वाणी का प्रसारण चाहे तो भारद्वाज पक्षी का मांस चटावे। बालक अन्न खूब खाय, यह चाहे तो कपिंजल पक्षी का मांस चटावे। शीघ्रगामी होना चाहे तो मछली का मांस चटावे इत्यादि मांस विधान छोड़ दिया है। इसी पर आप कहते हैं कि पारस्कर के अनुसार लिखते तो कम आक्षेप होते। स्वामी जी ने मनमानी कल्पना नहीं चलाई। मांस का त्यागना आप को नई कल्पना सूझती है। वेद में मांस खाना निषेध किया है, उसी के अनुसार स्वामी जी ने वेदविरुद्ध को त्याग दिया है॥

२०१ प्रश्न—चूड़ाकर्म आठवां संस्कार क्यों है? क्या इस में वेद का प्रमाण है। तथा पहिले वा तीसरे वर्ष में मुण्डन क्यों कराये। क्या द्वितीय वर्ष में कराने से कुछ प्रत्यक्ष दोष दिखा सकते हो। अथवा क्या द्वितीय वर्ष में बाल नहीं कटेंगे। यदि आश्वलायनादि के

प्रमाणों से पहिले तथा तीसरे में करना ठीक मानते हो तो वे प्रमाण वेदानुकूल क्यों कर हो सक्ते हैं ॥

२०२ प्रश्न—चार शरावों में जौ तिल चावल उड़द भर के वेदी के उत्तर में क्यों रक्खे। चार शरावों के रखने से क्या लाभ है। यदि अन्य कोई ऐसी बात लिखे तो पोपलीला कहते हो, तब स्वा० द० का ऐसा लिखना लोपलीला क्यों नहीं है। यदि सूत्र में लिखा कहो तो वह सूत्र वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ॥

२०१। २०२ उत्तर—वेदमन्त्रों में कहीं प्रथम तृतीय वर्ष में चूडाकर्म न करावे, ४ शरावों में जौ तिल न धरै इत्यादि बातें होतीं तो हम मान लेते कि गृह्यसूत्र वेदविरुद्ध हैं। तब इस बन्धन को त्याग देते परन्तु यावत् विरोध न पावे तब तक (विरोधेत्वन०) के अनुसार अनुमान करते ही हैं। देखो संस्कार चन्द्रिका ॥

२०३ प्रश्न—नाई की ओर देख के (आयमगन्त्सवि०ता०) इस मन्त्र का जप क्यों करे। क्या नाई इस मन्त्र को सुनके कुछ समझ लेता है और क्या वेद में लिखा है कि नाई की ओर देख के मन्त्र पढ़े। जैसे कोई नाई को देख कर अंग्रेज़ी वा अरबी में कुछ कहे वैसा ही

बेहूदापन का व्यवहार यह क्यों नहीं है। यदि नाई को कोई बात समझानी होतो जिस भाषा को वह जानता हो उसी में क्यों न कहे ॥

२०३ उत्तर-प्रथम तो पूर्व समय में नाई भी मन्त्रार्थ को समझते थे। दूसरे कर्मकाण्ड की भाषा संस्कृत ही है, जैसे अब कोई अपढ़ मूर्ख के नाम भी तार देवे तो भी अंग्रेज़ी भाषा ही में लिखा जाता है क्योंकि तार के दफ़्तर की भाषा अंग्रेज़ी ही है। आप के भी मत में विवाहादि की प्रतिज्ञा तथा इतर सङ्कल्पादि मूर्खों को भी संस्कृत में कराते हैं, यह उपदेश उन्हें कीजिये कि बेहूदापन न करें॥

२०४ प्रश्न-(ओषधे त्रायस्व) इस मन्त्र से तीन दाभ लेकर बालक के केशों में लगा के कहे कि हे ओषधे! हे कुश! तू इस की रक्षा कर। कुश से ऐसा क्यों कहा गया? क्या कुश बालक की रक्षा कर सकता है। यदि कर सकता है तो मूर्त्तिपूजादि कामों की निन्दा क्यों करते हो॥

२०४ उत्तर-(ओषधे०) यह विनियोग गृह्य का है। कुश अवश्य उस समय रक्षा करती हैं क्यों कि यदि

बाल काटनी कैंची इतनी तेज़ होगी जो कुशा को भी काट देगी वह बालों को सुगमतया काट देगी। यदि ठुंठी होगी या बालों को पकड़ती होगी तो कुशों पर ठहर जायगी, बालक को कष्ट नहीं होगा। मूर्त्तिपूजा के लिये तो गृह्यों में भी कोई विनियोग नहीं लिखा, आप की गांठ तो यों ही कट गई, सारे संस्कार लिख गये परन्तु गणेशपूजा का भी किसी सूत्र में ज़िकर तक नहीं आया। ऐसे पोच विषय को आप क्यों प्रस्तुत करके अपने पांव कुल्हाड़ी मारते हैं॥

२०५ प्रश्न—सं० वि० पृ० ६८ में स्वा० द० ने लिखा है कि मुण्डन के समय (विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि) मन्त्र से क्षुरे (अस्तुरे) की ओर देखता हुवा कहे कि हे क्षुरा! तू विष्णु की डाढ़ है। सो क्या यह निराकार विष्णु की डाढ़ है वा किसी साकार की। क्या वास्तव में यह क्षुरा विष्णु की डाढ़ है, ऐसा तुम सिद्ध कर दोगे। क्या यह लोपलीला नहीं है॥

२०६ प्रश्न-सं० वि० पृ० ६८ में स्वा० द० लिखते हैं कि (शिवो नामासि०) मन्त्र पढ़ के क्षुरे को दाहिने हाथ में लेवे और क्षुरे से कहे कि हे क्षुरा! (अस्तुरा)

तेरा नाम शिव है, तेरे पिता का नाम स्वधिति है, तुझ को नमस्ते करते हैं, तू मुझे मत मारियो। ऐसी प्रार्थना आ० समाजी लोग क्या छुरे से नहीं करते हैं? और क्या स्वा० द० ने ऐसा नहीं लिखा है। क्या आ० समाजी छुरे को नमस्ते बाल बनवाते समय किया करते हैं। न करते हों तो स्वा० द० का उपदेश मान के हजामत के समय छुरा को पहिले नमस्ते किया करें॥

२०५। २०६ उत्तर—हम ने प्रतिष्ठित पुरुषों से सुना है कि पं० भीमसेन जी, ज्वालादत्त जी को ही स्वामी जी ने आज्ञा दी थी कि संस्कारविधि गृह्यों के अनुकूल वेदानुकूल बना दो और संस्कारभास्करादि पुस्तकों से जो भाग त्याज्य हो निकाल दो, तदनुसार पुस्तक बनाया गया, कहीं कहीं स्वामी जी भी मशवरा देते थे बस जब पुस्तक आपने ही शोधा है फिर अब ऐसी शङ्का करना फ़िजूल है। हां जो अन्य किसी पुस्तक में भी विधान न हो और स्वामी जी ने स्वाक्षरों से कोई नई बात लिख दी हो तब आप का शङ्कासमूह समूल हो सकता है (विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि०) इत्यादि अलङ्कार युक्त मन्त्रशैली सब सूत्रकारों ने मानी है। विष्णु का

अर्थ यहां यज्ञ है। यज्ञ का उस्तरा सभी को प्रत्यक्ष दीखता है। आप अपने चतुर्भुजी विष्णु की मूर्त्ति पर उस्तरे की डाढ़ बनाने को जयपुर को आर्डर भेजवादें तब उस्तरे पर पुष्प चढ़ा कर दण्डवत् करें॥

२०७ प्रश्न-फिर (स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः) हे देवतों के हथियार वज्ररूप अस्तुरा! तू इस बालक को मत मारना। ऐसा स्वा० द० ने लिखा है कि इस मन्त्र को पढ़के छुरे को केशों के समीप ले जावे। क्या छुरा बालकों को मार सकता है? आ० समाजियों को उचित है कि वे आगे स्वा० द० की भूल मान कर छुरे से कुछ न कहें किन्तु नाई से प्रार्थना किया करें कि हे नाई तू इस बालक के क्षुरा मत लगादेना। क्या ये बातें समाज मत के अनुकूल हैं?। क्या ऐसे लेखों से तुम्हारा मत ऊटपटांग सिद्ध नहीं होता॥

२०८ प्रश्न-फिर स्वा० द० लिखते हैं कि (येनाव-पत्सविता०) इस मन्त्र से कुशों सहित बाल काटे और कहे कि विद्वान् सविता देव ने जिस क्षुरा से सोम राजा के और वरुण देवता के बाल बनाये थे उसी छुरा से इस बालक के बाल बनाओ। क्या स्वा० द० का यह कहना ठीक है। क्या यही छुरा अनादि कल्पकल्पान्तर

से चला आता है। तुम्हारे मत में अब तक तीन ही अनादि थे। अब क्या यह क्षुरा अनादि नहीं बनेगा तथा सविता ने सोम और वरुण के बाल कब बनाये थे, वही क्षुरा तुम को कैसे और कहां से मिल गया ?

२०७। २०८ उत्तर-अलंकार विधान हम पूर्व उत्तरों में बता आये हैं, वैसा ही यह भी है। आप के पाधे पौराणिक सूत के डोरे हाथ में बान्ध कर पढ़ते हैं (येन बद्धोबलीराजा दानवेन्द्रोमहाबलः। तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल। १ वह डोरा बलिराजा को बान्धने का क्या घर २ पाधा जी के बड़े बांट गये थे जहां से आप को वह डोरा मिला, वहीं से हमें उस्तरा॥

२०९ प्रश्न—पारस्कर आश्वलायनादि सब गृह्यसूत्रकार आचार्यों ने विवाह के पश्चात् कम से कम तीन दिन तक कन्या वरों को ब्रह्मचारी रहने के लिये लिखा है और सब आचार्यों के विरुद्ध स्वा० द० ने रात को दश बजे विवाह कराके उसी दिन उसी समय दोनों का संयोग (हमबिस्तर) कराना लिखा है सो क्या यह लोक वेद सभी से विरुद्ध घृणित निन्दित स्वा० द० का लेख नहीं है। क्या ऐसे लेखों से आ० समाजी लज्जित

नहीं होते हैं। वा क्या मूल वेद में ऐसा करने का प्रमाण दिखा सकते हैं। और क्या आ० समाजी विवाह की रात में ही संयोग कराते हैं ॥

२१० प्रश्न—स्वा० द० ने संस्कार वि० पृ० ११७ में लिखा है कि "जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध होजाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसी रात्रि को विवाह विधि करे" सो क्या तुम लोग ऐसा ही करते हो। और ऊपर के लेख को सत्य मानते हो तो क्या वेदादि किसी भी ग्रन्थ का प्रमाण ऐसा करने के लिये दे सकते हो। यदि स्वा० द० के ऐसे कल्पित लेख को मिथ्या मानते हो तो उस पर हरताल क्यों नहीं फेर देते हो ॥

२०९। २१० उत्तर—स्वामी दयानन्द ने आचार्यों के विरुद्ध उसी रात्रि में (हमबिस्तरी) संयोग कहीं नहीं लिखा, बल्कि पृष्ठ १६१ में विवाहविधि हुवे पीछे लिखा है कि "बधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना करके ३ रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रतसहित रहकर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे।

तत्पश्चात् ४ थे दिन गर्भाधान संस्कारविधिपूर्वक करें। "
यह मत सब आचार्यों के अनुकूल है ।

संस्कार के आरम्भ की भाषा में कुछ अक्षरों की भूल संशोधकों से अवश्य हुई है। जहां लिखा है कि (जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस [से ४ दिन पूर्व] रात्रि में विवाह करने के लिये) बस यह ५ । ५ अक्षर की संशोधकों की भूल ने आप ही को भ्रम में डाला है। यही उत्तर प्रश्न २१६ का भी है। पं० भीमसेन जी संशोधक थे। क्या ऐसी नमकहलाली पर भी लज्जित नहीं होते ॥

२११ प्रश्न—विवाह में यज्ञकुण्ड की चार और सात परिक्रमा के ऊपर जो तुम लोग विवाद किया करते हो सो क्या परिक्रमा कराने के लिये वेद का प्रमाण दे सकते हो। परिक्रमा कराना पोपलीला क्यों नहीं है। जब सात परिक्रमा तुम को अच्छी नहीं लगतीं, सात का खण्डन करते हो तब चार परिक्रमा किस युक्ति से ठीक हैं। यदि सूत्र का लेख कहो तो गृह्यसूत्र वेद विरुद्ध क्यों नहीं ॥

२११ उत्तर—यज्ञकुण्ड की ७ परिक्रमा किसी भी पद्धति में नहीं लिखी। मालूम हुवा पं० भीमसेन जी ने कोई पौराणिक विधि से भी विवाह नहीं कराया है, न ७ परिक्रमा का रिवाज ही भारत की उच्च जातियों में है, सर्वत्र ४ ही परिक्रमा होती हैं। पारस्कर गृह्य सूत्र ने तो तीन ही लिखी हैं। देखो ४। ७ (एवं द्विरपरम्०) अर्थात् लाजाहोम करके कन्या १ परिक्रमा अग्नि की करे। इसी प्रकार दो वार फिरपरि क्रमा करे। परन्तु हरिहर भाष्य में लिखा है कि देशाचार से ४ थी परिक्रमा चुप चाप करें। (समाचारात् तूष्णीं चतुर्थं परिक्रमणं वधूवरौ कुरुतः) भला जिस ने सूत्र न देखे हों, भाष्य न देखा हो तथा लोकवृत्त न देखा हो वह स्वामी दयानन्द की अशुद्धि निकालकर कर्मकाण्ड की पूंछ लगावे॥

२१२ प्रश्न—सप्तपदी तुम क्यों कराते हो। इन में युक्ति वा प्रमाण क्या है। क्या ईशान को सात पग कन्या के चलाने से इष्, ऊर्ज्, आदि सात प्रकार के पदार्थ मिल सकते हैं। क्या यह कार्यवाही तुम्हारे मत के अनुकूल है॥

२१२ उत्तर—सप्तपदी गृह्यसूत्रोंके विधानानुसार कराते हैं॥

२१३ प्रश्न—जब स्वा० द० ने विवाह संस्कार के आरम्भ

में पृ० ११७ में साफ २ लिखा है कि विवाह विधि इस रीति से करें कि जिस से रात्रि को बारह बजे तक यह सब पूरा हो सके। तब पृ० १३८ में (तच्चक्षुर्देव०) मन्त्र पढ़के आधीरात को सूर्य का दर्शन करना क्यों लिखा है। क्या आ० समाजियों के विवाह में आधीरात्रि के समय सूर्य उदय हो जाते हैं। यदि नहीं हो सकते तो दर्शन कैसे करे। क्या ऐसी बात का उत्तर तुम कभी दे सकते हो और सूर्य का दर्शन क्यों करावे। क्या फल है। क्या मन्त्र पढ़के सूर्य के दर्शन करना आ० समाजी मत के अनुकूल है और सूर्य का दर्शन कराने के बाद क्या दिन में ही गर्भाधान होगा॥

२१४ प्रश्न—सं० वि० पृ० ११७ में लिखे अनुसार एक घण्टा रात्रि जाने पर कन्या वर को स्वा० द० ने (काम वेद०) इत्यादि मन्त्रों से स्नान कराके विवाह कराया। डेढ़ दो घण्टे में विवाह विधि हुआ। विवाहविधि पूरा होने के पूर्व ही पृ० १६८ में (तच्चक्षुर्मन्त्र) से सूर्य का दर्शन करा दिया कि जब सूर्य का उदय हो जाना असम्भव था। फिर पृ० १६९ में "तत्पश्चात् सूर्य अस्त

हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय” विवाह का उत्तर विधि करें। सो क्या समाजी लोग इस अट पटाङ्गको सोच समझके लज्जित नहीं होंगे। प्रथम एक घंटारात्रि जानेपर स्नान कराके विवाहविधिका आरम्भ कराया, फिर रात्रि में सूर्य का दर्शन कराया तदनन्तर आध घण्टेमें सन्ध्या होगई। सूर्य दर्शन करानेके बाद ध्रुव और अरुन्धतीनामक तारागणका दर्शन कराया। क्या इत्यादि लेख परस्पर विरुद्ध और असम्भवनहीं है॥

२१३। २१४ उत्तर—सूर्यदर्शन ध्रुवदर्शन सब गृह्यों में पौराणिक पद्धतियोंमें लिखा है। इसलिये करातेहैं। जो शङ्का सं०वि० पर है वही आपके शिरपर सवार है। रही भाषाकी बात सो आपके शोधन बोधनकी अशुद्धि है॥

२१५ प्रश्न-स० वि० पृ० ११८ में (काम वेद ते०) इत्यादि तीन मन्त्र स्वा० द० ने वधूवर को स्नान करने के लिखे हैं। सो इन मन्त्रों में ऐसे कौन पद हैं जिनसे स्नान करने का अर्थ निकले। और इन मन्त्रों में दूसरे मन्त्र के पूर्वार्द्ध का अक्षरार्थ लिखने में हमें संकोच है। इस से (इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुख- मेतद्द्वितीयम्) इस का अक्षरार्थ आ० समाजियों से

कराया जाय तब आ० समाजी यदि संस्कृतज्ञ होगा तो लज्जा से मौन हो जायगा और उक्त मन्त्र का अक्षरार्थ भाषा में न कहेगा ॥

२१५ उत्तर—यह कोई नियम नहीं है कि अर्थद्योतक होने पर ही मन्त्र का विनियोग कर्मकाण्ड में हो । विवाह में ही वरके आचमन का (आमागन्०) यह मन्त्र है। इस में ही आचमन का अर्थ कहां है। न यही नियम है कि मन्त्र का अर्थ प्रकट करने योग्य न हो तौ कर्म काण्ड में न बोला जावे। विवाह में (यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफम्) इस मन्त्र का अक्षरार्थ आप करते भी लज्जा से मौन होजायेंगे ॥

२१६ प्रश्न—पृ० ११७ "जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसी रात्रि में विवाह करने के लिये" लिख कर जहां विवाह विधि पूरा हुआ वहां पृ० १४३ में स्वा० द० लिखते हैं कि " तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि पर बिछौना करके तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत सहित रह कर शयन करें " इस में यदि पहिले लेख को सत्य

मानें तो यह पिछला मिथ्या है। यदि इस पिछले को सत्य कहैं तो पहिला मिथ्या मानना पड़ेगा। सो हे समाजिन् बताओ इन में स्वा० द० का कौन सा लेख झूंठा वा कौन सा सत्य है॥

२१६ उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर ११० प्रश्न के उत्तर में दे चुके हैं। वहीं देखो॥

२१७ प्रश्न—सं० वि० पृ० १७७ में स्वा० द० ने " अथ बलिवैश्वदेवविधिः " लिखा है। उस के नीचे (अग्नये स्वाहा) इत्यादि लिखा। सो तुम बताओ कि अग्नि में होम करना देवयज्ञ कहाता है वा नहीं। यदि हां कहो तो होम को भूतयज्ञ नामक बलिकर्म में मिलाना स्वा० द० की भूल क्यों नहीं है। यदि नहीं कहो तो देवयज्ञ भूतयज्ञ में क्या भेद है सो बताओ॥

२१७ उत्तर—पारस्करगृह्य में द्वितीय काण्ड नवमी कण्डिका में पांच महायज्ञों का जहां विधान है वहां वैश्वदेव यज्ञ में (वैश्वदेवादन्नं पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयात्) इत्यादि सूत्र में पाठ होने से होम करना योग्य है। हरिहर भाष्य में लिखा है कि "तत्र पञ्चसु ब्रह्मणे स्वाहेत्येवमादिकोहोमात्मकः पूर्वोदेवयज्ञः। ततोमणिके

श्रीनित्येवमादिर्बलिरूपोभूतयज्ञः । ततः पितृभ्यः स्वधा नम इति बलिदानं पितृयज्ञः । हन्तकारातिथिपूजादिकोमनुष्ययज्ञः । पञ्चमोब्रह्मयज्ञः । एते पञ्च महायज्ञा अहरहःकर्तव्याः ॥

सब यज्ञों में सब यज्ञ साधारण रूप से शामिल रहते हैं। जैसे पौराणिक मृतक श्राद्ध में भी देवपूजन होता है, उसे देवयज्ञ नहीं कह कर पितृयज्ञ ही कहते हैं। बस जिस यज्ञ की प्रधानता होती है उसी नाम का यज्ञ कहाता है। संस्कारों में देवयजन होने पर भी वह देवयज्ञ नहीं कहाता है, ऐसे ही वैश्वदेव में भी अन्तर्गत देवयज्ञ है। इस में स्वामी जी की भूल नहीं है॥

२१८ प्रश्न—सं० वि० गृहाश्रमप्रकरण (यस्याभावे०) इत्यादि मन्त्र में स्वा० द० ने जो इन्द्र की पत्नी सीता लिखी है, सो क्या वेदभाष्य में लिखी वही [पटेला] खेत के ढेला तोड़ने की] लकड़ी सीता है वा कोई अन्य ? ऐसी दशा में वे इन्द्र कौन हैं जिनने पटेला लकड़ी के साथ विवाह किया था। और तुम हर एक आ० समाजी इस इन्द्रपत्नी को अपने २ घर नियम से रखना चाहते हो तब क्या सब के यहां एक २ पटेला रक्खा है॥

२१८ उत्तर-यदि पारस्करगृह्य सूत्र द्वितीय काण्ड की सप्तदशी कण्डिका के सूत्र ९ को देख लेते तौ यह लघु शङ्का भी आप की निकल जाती। जहां (अथ सीतायज्ञः १) सूत्र से आरम्भ किया है और (इन्द्र-पत्नीमुपह्वये सीता ऽं सा०) यह सूत्र के मूल में पढ़ा है। यह नवसस्येष्टि का विधान है। गृह्यानुसार संस्कारविधि में भी लिखा गया है। यदि आर्यों को घर २ पटेला रखना पड़ेगा तौ सनातनी गर्दभेज्या के लिये घर २ गधे रखने पड़ेंगे। सीता नाम पटेला का नहीं है। लाङ्गल रेखा का भी तौ नाम है। आगे आप को श्राद्ध तर्पण की बानगी दिखावेंगे॥

८-श्राद्ध तर्पण विषय॥

२१९ प्रश्न-तुम लोग श्राद्ध किसी खास कर्म को मानते हो तौ विवाह यज्ञोपवीतादि के तुल्य उस का विधान किस ग्रन्थ में है और उस की पद्धति कहां है॥

२१९ उत्तर-श्राद्ध शब्द तौ वेदों में नहीं आया है, पितृ शब्द है और पितृयज्ञ का विधान शतपथादि में

है। उस का सविस्तर उत्तर पिण्डपितृयज्ञ नाम के व्याख्यान में श्रीमान् पं० तुलसीराम स्वामी ने लिखा है। यदि आप श्राद्ध पद्धतियों को भी देखलेते तो भी जीवितों का ही तर्पणादि सिद्ध होता, मरों का नहीं। न मृत शरीरों की तृप्ति ब्रह्मभोज से होती है। यही आर्यसमाज का सिद्धान्त है॥

२२० प्रश्न—"श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" ऐसा अर्थ मानते हो तो यह श्राद्ध का शाब्दिक अर्थ हुआ। तब श्राद्ध का लाक्षणिक अर्थ क्या है?। अथवा क्या लाक्षणिकार्थ है ही नहीं। यदि शब्दार्थ को ही मुख्य मानते हो तो क्या विशेष प्राप्ति विशेष मेल अर्थात् किसी बालक को छाती से लपटा लेने पर उसके साथ विवाह हुआ मानोगे। और उप नाम समीप बुला लेना उपनयन मानोगे॥

२२१ प्रश्न—क्या समाजी मतके अन्य कामोंको श्रद्धा से करना नहीं मानते हो। यदि अन्योंको भी श्रद्धासे करना मानते हो तो उन सबका नाम श्राद्ध क्यों नहीं है। जब नित्य २ श्रद्धा से भोजन करते हो तो क्या वह भी श्राद्ध है॥

२२० । २२१ उत्तर—श्रद्धापूर्वक पित्रादि को भोजन कराना श्राद्ध योगरूढि मानने में आर्यसमाज की सिद्धान्त हानि नहीं और सनातनी भी इस को ही श्राद्ध मान योगरूढि ही कहते हैं। भेद केवल जीवित मृतक कहने का है, सो आप सिद्ध करते। वृथा शङ्कासमुद्र की टक्कर में पड़ गये। क्या आप मृत श्राद्ध को अश्रद्धा से करते हैं? जैसे पति पत्नी को पास बुलावे तौ उपनयन नहीं कहाता, ऐसे ही अन्य काम श्रद्धा से करने पर भी श्राद्ध नहीं कहाते हैं॥

२२२ प्रश्न—तुम जीवितों का श्राद्ध मानते हो तौ मरों का विवाह करना क्यों नहीं मान लेते। यदि मरों के विवाह को असंभव तथा व्यर्थ कहो तो वैसा ही जीवितों का श्राद्ध तर्पण व्यर्थ वा असम्भव क्यों नहीं है! क्या जीवितों का श्राद्ध कभी हुआ वा किसी ने किया और लिखा है॥

२२२ उत्तर—आर्यसमाजियों के बूढ़े पितरों को तौ विवाह कराने की आवश्यकता यूं नहीं है कि उनके सन्तान मौजूद है। सनातनियों के पितरों ने अन्य जन्म धारा होगा तब मुर्दे पितरों के यज्ञोपवीत विवाह और

कभी नामकरण भी करा दिया करो। जब उन्हें भोजन पहुंच जाता है तो उन को स्त्री भी पहुंच जायगी, नहीं तो शय्या ख़ाली रहेगी। वस्त्राभूषण भी व्यर्थ है। सनातनी भाई पुरुषों के मरने पर शय्या दान पर स्त्री पुरुषों के दुहरे सामान दिया भी करते हैं, चाहे स्त्री जीती भी हो। सभी सामग्री पहुंच जायगी। तुलसी शालग्राम के विवाह समान पितृविवाह भी होने लगें तो ख़ूब नक्कारख़ाने बजा करें। यदि मुर्दों का विवाह असम्भव है तो भोजन भी असंभव है। जीवतों का श्राद्ध सम्भव है और आवश्यकता हो तो विवाहभी सम्भव है। श्रीमान् भीष्मपितामह ने तो पिता का विवाह कराया, अब भीमसेनजी ने मुर्दों का विवाह कराया। अध्यापयामास पितॄन्० लिखा है। अब विवाहयामास पितॄन्० भी बनेगा॥

२२१ प्रश्न—स्वा० द० ने सन् ७५ के सत्यार्थप्रकाश में "जितने जीवित हों उन के नाम से तर्पण न करे किन्तु जो २ मर गये हों उन के नाम से तर्पण करे" लिखा है। सो इस को तुम प्रमाण क्यों नहीं मानते। यदि मानते हो तो जीवितों का श्राद्ध तर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं है। यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं लिखा

किन्तु छपाने शोधने वालों ने वैसा बना दिया है तो क्या तुम में से कोई भी समाजी वेद पुस्तक हाथ में लेकर शपथ के साथ कह देगा कि यह सत्य है ॥

२२३ उत्तर—स्वामी दयानन्दके क़लम से सं० ७५ के सत्यार्थप्रकाश में मुर्दों का तर्पण लिखा गया और उन का वही सिद्धान्त जीवन पर्यन्त रहा, इस का खण्डन नहीं लिखाया गया, यह कोई सनातनी गङ्गाजली हाथ में लेकर भी कह सक्ता है ? और क्या प्रश्नकर्ता भी० से० इस की शपथ उठा सक्ते हैं कि हमने कभी मृतक श्राद्ध का खण्डन नहीं किया । आप जीतते जागते भले ही आर्य सिद्धान्त बदल डालें, स्वामी दयानन्द से गुरु-जनों से हमें उम्मेद नहीं है ॥

२२४ प्रश्न—जब अथर्ववेद १८ । १ । ४४ (असुं यईयुः) मन्त्रांश का प्राण वायुमात्र सूक्ष्मदेहधारी पितर निरुक्त के अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जीवित स्थूल देहधा-रियों में वह अर्थ कैसे घट सकेगा । क्या उस से मृत पितर सिद्ध नहीं हैं ॥

२२४ उत्तर—इस प्रमाण से तो (मृत) सनातनी श्राद्ध

का खण्डन होता है क्योंकि इस मन्त्र में स्पष्ट है कि "असुं यईयुः" जो प्राणधारी हैं अर्थात् मरे नहीं हैं। बस लम्बग्रीव पहाड़ पर चढ़ना चाहता था, पांव फिसल पड़ा नीचे गिरा। इस मन्त्र में मृतकश्राद्ध का लेश भी नहीं है। विशेष देखो भास्करप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृ० १४२ उदीरतामवर० मन्त्र का टुकड़ा (असुं यईयुः) है जो ऋग्वेद १०।१५।१ में, यजु० १९।४९ में भी यह मन्त्र है॥

२२५ प्रश्न—जब अथर्ववेद १८।२।४९ (यआविविशुरुर्वन्तरिक्षम्) जो पितर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश कर चुके। सो क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष में प्रवेश कर सकते हैं ?। यदि नहीं कर सकते तो मृत पितरों का श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्र से सिद्ध क्यों नहीं है॥

२२५ उत्तर—(य आवि०) इस मन्त्र का भी (ये नः पितुः०) यह आरम्भ है। समस्त मन्त्र देखलो कहीं भी ब्रह्मभोज से मृत पितरों की तृप्ति नहीं पाती। आप भी तो ठोस पत्थर में नहीं हैं, बड़े अन्तरिक्ष में ही हैं॥

२२६ प्रश्न—जब अथर्व वेद १८।३।४४ (अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत) यहां हविष् खानेके लिये उन पितरों को बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर अग्नि में जलाये

गये थे। क्योंकि (यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरो ऽग्निष्वात्ताः) जिन को जलता हुवा अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त कहाते हैं। यह अग्निष्वात्त पद का अर्थ शतपथ में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं। इस प्रमाण से भी मरों का श्राद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है। क्या तुम्हारे मत में जीवित ही जला दिये जाते हैं और क्या जल जाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं। यदि ऐसा हो तो किसी समाजी को दाह कर्म हो जाने पर क्या जीवित दिखादोगे॥

२२६ उत्तर—(अग्निष्वा०) मन्त्र का शतपथ के प्रमाण से अब आप स्वयं ही यह अर्थ करते हैं "जिन को जलाता हुवा अग्नि चाट जाता है" फिर भी नहीं समझे कि अग्नि तो शरीर को चाटता है, जीव को नहीं चाटता। क्या आप की समझ में जीते ही मनुष्य जला-देने चाहियें? यदि जीतों को न जलाओगे तो अग्नि-ष्वात्त कैसे हों? जो अग्निविद्या में निपुण होते हैं उन्हें ही या किसी कारणवश शरीर जल गया हो ऐसे आपत्तिग्रस्त पुरुषों को बलाके भोजन कराना तो समझ

है। या आपके मुर्दों के जले शरीर भी फिर बनजाते हैं? और चिता में से उठ कर भोजन जीम जाते हैं? क्या कभी ऐसे तमाशे किसी को दिखा सकते हो कि अध-जली लाश भोजन करने आप के घर आती हों॥

२२७ प्रश्न-जब अथर्व० १८। ३। ६९ (यास्ते धाना अनु किरामि तिलमिश्राः) यहां तिल मिले जौ पितरों के लिये बिखेरना लिखे हैं सो क्या जीवितों के सामने बिखे-रना उचित है और क्या इस से मृतश्राद्ध सिद्ध नहीं होता॥

२२७ उत्तर-"धाना" का अर्थ "जौ" करना आपने बहुत से कोश टटोल कर देखा होगा? धाना का अर्थ खील है। क्या खील मिले तिलभुग्गे जीवतों को कड़वे लगते हैं? या होम में काम नहीं आते। मरे बाप दादाओं के आगे तिल धाना आप बखेरने की विधि दिखा सकते हैं? कभी नहीं॥

२२८ प्रश्न-अथर्व० १८। ३। ७२ (ये ते पूर्वे परागताः) जो पहले पितर पूर्वकाल में व्यतीत हो गये उन के लिये भी तर्पण करना चाहिये। क्या इस प्रमाण से मरे हुवे पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता। और क्या ऐसा कथन जीवितों में घट सकता है?

२२८ उत्तर—इस अथर्ववेद के पूर्व मन्त्र को पढ़ लेते तौ भी इसे तर्पण का न बताते। इसी मन्त्र में आगे (घृतकुल्यैतु शतधारा) भी आया है जिस में साफ़ घृत की धारा चिता पर डालने का भाव है। आपको सर्वत्र तर्पण ही सूझता है। क्या आप घृत के तर्पण कराया करोगे? तबसे तर्पण भी क़ीमती होजायगा। अभी तौ "ऊपर डाभ इहरका पानी, मरे पिताकी यह मिजवानी" की कहावत थी॥

२२९ प्रश्न—अथर्व० १८। ४। ४८ (मृताः पितृषु संभवन्तु) मरे हुवे पितर पितृयोनि में प्रकट हों उन्हीं के लिये श्राद्ध तर्पण होता है। क्या यहां मूल वेद में मृत शब्द नहीं है और क्या इस में मरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता॥

२२९ उत्तर—भला इस मन्त्र में यह कहां है कि उन्हीं के लिये श्राद्ध तर्पण होता है। यह प्रार्थना है कि मर कर पितृयोनि में हों। यदि किसी योनि की प्राप्ति मात्र से पितृ तर्पण सिद्ध हो तौ (रासभोबहुयाजी स्यात् अथवा मृतस्यैकादशाहे वै भुञ्जानः श्वाभिजायते) इस लेख से कि मुर्दे के एकाशाह श्राद्ध खाने से कुत्ता होता

है तो कुत्तों का भी तर्पण करोगे ? बस इस मन्त्र से मृतक श्राद्ध सिद्ध नहीं होता, केवल मरने पीछे पितृयोनि में जावें ऐसा अभिलाष मात्र सिद्ध होता है। यह भी नहीं कि मर कर सब पितर ही होते हों॥

२३० प्रश्न—अथर्व० १८ । ४ । ६३ (अधामासिपुनरा-यातनोगृहान्०) यहां पार्वणादि मासिक श्राद्ध में पितरों का विसर्जन करके महीने भर बाद फिर बुलाना कहा है सो क्या जीवित पितरों को तुम महीने २ में एक ही बार भोजन देते हो। क्या वे ऐसा करने से जीवित रह सकते हैं। यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं। (नमः पितृभ्योनिविषद्भ्यः) अथर्व० १८ । ४ । ८० दिव् नाम स्वर्ग लोक में रहने वाले पितरों को यहां नमस्कार कहा गया है। सो क्या जीवित ही समाजियों के पितर स्वर्ग में जाते हैं। यदि कोई जीवित स्वर्ग में जाते नहीं देखे जाते तो इस से मरों का श्राद्ध करना सिद्ध क्यों नहीं है॥

२३० उत्तर—जिन्हें यह भी ख़बर न हो कि पार्वण श्राद्ध कब होता है वह ऐसे विषय में टांग अड़ा कर क्यों दुःख उठाते हैं। (प्रत्यब्द पार्वणं कार्य्यम्) गरुड़ पु० प्रेतकल्प में लिखा है प्रतिवर्ष पार्वण होता है, प्रति-

मास पार्वण नहीं होता। क्या आप कोई तीसरा रास्ता निकालेंगे ? मरे पितर क्या १ ही दिन में महीने भर का भोजन पेट में रखलेते हैं या वानरों के समान उनके भी गलाफू होते हैं जो उस को पुनः २ एक मास तक जुगालते रहते हैं ? जीवित पितर नित्यप्रति अपने पुरुषार्थ से भी भोजन करते हों तौ भी पुत्र का धर्म है कि वह प्रतिदिन नहीं तौ प्रतिमास ३० को यदि ऐसा भी न हो सके तौ प्रतिवर्ष पितृपूजन अवश्य करै। सनातन धर्मानुसार आषाढ़ी १५ गुरुपूजा के दिन सब लोगों को गुरुपूजा का विधान किया जाने से यह नहीं है कि १ वर्ष में एक ही वार गुरुपूजा करै किन्तु नित्य करे यह गौण बात है। प्रतिवर्ष गुरुपूजा का विशेष विधान है। इसी प्रकार पितृपूजन भी समझो। नित्य २ पितृयज्ञ करना भी लिखा है। और आर्यों के पितर जीवितों का तौ आना जाना हो सकता है, क्या आप के मरे पितर भी आते जाते हैं। यदि आते हैं तौ उन से यह पता भी बूझलेना चाहिये कि अब आप किस योनि में, किस स्थान में, किस ज़िले में विराज रहे हैं। भले मानषों! अपने घरकों की तौ बात बूझ लेते।

सच्चे आर्यों के जीवते पितर तौ सुख में रहने से सदा स्वर्ग में रहते हैं, उन की ख़ूब ख़ातिर होती हैं। मृत-पितरों के श्राद्धश्रद्धकों की कीर्त्ति किसी कवि ने इस प्रकार की है—

जीवित पिता से जङ्गम जङ्गा,
मरे पिता पहुंचाये गङ्गा।
जीवित पिता की बूझी न बात,
मरे पिता को दूध और भात।
जीवित पिता के मारें डण्डा,
मरे पिता को देते पिण्डा।
जीवित पिता की बात न मानी,
मरे पिताको गङ्गा का पानी।
जीवित पिता को ग्रास न एक,
मरे पिता को श्राद्ध अनेक।

२३१ प्रश्न—क्या तुम्हारे मत में जीवित पितरों को अपसव्य हो, बायां घोंटू पृथिवी में टेक के, दक्षिण को

मुख करके भोजन दिया जाता है। और ऐसा क्यों करना चाहिये, क्या इस का कुछ फल वा प्रयोजन प्रत्यक्ष में दिखा सकते हो। क्या इस प्रकार दिये भोजन को तुम्हारे जीवित पितर खा लेते हैं क्या अशुभ नहीं मानते और ऐसा कृत्य पोपलीला क्यों नहीं है॥

२३१ उत्तर—यह पितृपूजा का (कायदा) एटीकेट है, महाराजों को जब राजतिलक होता है तब बहुत सी क़वायद सी करनी पड़ती हैं। जब राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड सिंहासनासीन हुवे थे तब ५० से ऊपर ऐसी क़वायद के सी बातें हुईं थीं जिन को तुच्छ मनुष्य व्यर्थ कह देते हैं, परन्तु राज घराने में पूर्वजों से होती आई बातों को करना होता है। वृद्ध गुरुजन मित्रों के मिलने पर प्रणाम समय किसी देश में दोनों हाथ जोड़ने, कहीं एकहाथ माथे पर धरना, कहीं १ अङ्गुली (तर्जनी) मात्र से सलाम होता है। कहीं पुलिस फ़ौज में चित्त हाथ मस्तक के पास कान पर थप्पड़ सा खड़ा करना होता है। तो क्या कोई उन के भी अर्थ बता सकता है? ऐसे ही यह सव्यापसव्य का वर्त्ताव है। क्या मरे पितरों को सव्य रहते भोजन कडुवा लगता है? ऐसे सवाल

हम भी कर सकते हैं। जैसे सिविल अफ़सरों और फ़ौजी अफ़सरों के प्रणामभेद से मनुष्यत्व भेद नहीं होता। विवाह समय वर के पाद्य अर्घ्य देने से वर को विष्णु-रूप तक पौराणिकों के पुकारने पर भी वर मनुष्य ही रहता है, ऐसे ही विशेषावसर पर पितृपूजा समय अप-सव्यादि भेद होने से पितरों के मनुष्य होने में सन्देह नहीं है॥

२३२ प्रश्न—क्या तुम लोग (अपराह्णः पितॄणाम्) इस शतपथ प्रमाण के अनुसार भूखे पिता को भी दोप-हर के बाद ही भोजन दोगे। और मनुष्य के भोजन का समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरों का भिन्न २ समय क्यों रक्खा है। क्या इस से जीवित मनुष्यों से पितरों का भिन्न होना सिद्ध नहीं है॥

२३२ उत्तर—क्या तुम दोपहर से पहिले स्वयं भोजन करने के बाद ही उच्छिष्ट पितरों को देते हो? यदि पितरों को दोपहर पीछे देकर पीछे स्वयं खाते स्त्री पुत्रों को भोजन कराते हो तो वह जीवित स्त्री, पुत्र, इष्ट, मित्र

मनुष्य नहीं हैं क्योंकि तुम्हारे कथनानुसार मनुष्य भोजन का समय मध्यान्ह लिखा है ॥

२३३ प्रश्न—जब शतपथ काण्ड २ । ३ । ४ में लिखा है कि (तिरइव वै पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्यों से पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं । सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं । क्या इस से मृतपितरों के लिये श्राद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है । शतपथ में पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जीवित पितरों को भोजन परोस कर उन की ओर पीठ कर देना ठीक समझते और वैसा करते हो ?

२३३ उत्तर—मनुष्यों से पितर छिपे हैं इसका मतलब यह है कि—पितर नामक एक देव योनि का भेद वायु रूप चन्द्रलोकस्थ भी है, वह अग्निद्वारा कव्य ग्रहण करते हैं । इस से ब्रह्मभोज का श्राद्ध सिद्ध नहीं है, न मृत पितरों की दाल गली है । शतपथ में पीठ देने का पता देते तौ उत्तर देता । बेपते बात का उत्तर नहीं देना चाहिये । भोजन करते सम्मुख दृष्टि नहीं चाहिये ॥

२३४ प्रश्न—(स निदधाति ये रूपाणि) शतपथ २ ।

३ । ४ में लिखा है कि (ये रूपाणि०) मन्त्र पढ़ के पिण्डों के स्थान से दक्षिण में एक अङ्गार रक्खे। सो क्या जीवित पितरों के पास तुम मन्त्र पढ़ के एक अङ्गार रखते हो। तब क्या गर्मी के दिनों में तुम्हारे पितर घबड़ाते नहीं हैं।

२३४ उत्तर-(ये रूपाणि०) शतपथ मन्त्र से अङ्गारे के रखने का मतलब क्या आप नहीं समझे? जब आप ठाकुर पूजा में धूप के लिये भी अङ्गारे धरते हो तब धूप जला कर गर्मी के दिनों में भगवान् क्षीरशायी को घबड़ा देते होंगे? भोजन समय तो अब भी सदाचारी लोग अङ्गारी मङ्गाकर बलिवैश्वादि करते हैं। धूप जलाने से तो वहां के विषैले क्षुद्रजन्तु नष्ट होते हैं मक्खी, ततैये, मिष्ट पदार्थों पर नहीं पड़ते इत्यादि बहुत ही फ़ायदे होते हैं॥

२३५ प्रश्न-ऋग्वेदादि भूमिका में स्वा० द० ने अग्नि-ष्वात्ता का अर्थ अग्निविद्या को जानने वा अग्नि से विशेष कार्य साधन करने वाले अञ्जन के ड्राइवर आदि किया और आगरे के शास्त्रार्थ में समाजी उपदेशकों ने जले हुवे मुर्दों के परमाणु अर्थ किया है। इन परस्पर विरुद्ध दोनों में कौन अर्थ सत्य है और दो में कौन एक मिथ्या है॥

२३६ प्रश्न–क्या समाजी लोग अग्निष्वात्त पितरों को बुलाने के समय काले २ अञ्जन के झाड्बरों का आवाहन करते हैं अथवा तु० रा० के किये अर्थानुसार जले हुवे मुर्दों के परमाणुओं से (अग्निष्वात्ताः पितरएहगच्छत सदः सदः सदत) कहते हैं कि हे जले हुवे मुर्दों के परमाणुवों ! तुम लोग यहां आओ ,अपने आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजन के बाद हम को बहुतसा धन दे जावो । सो क्या मुर्दों के जले हुए परमाणु आते, आसनों पर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं । इस से क्या समाजियों के पितर मुर्दों के जले हुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ॥

२३५ । २३६ उत्तर–दोनों अर्थ ठीक हैं । वेदों के बहुत अर्थ होते हैं जहां जैसा प्रकरण होता है वही माना जाता है । शेष उत्तर देखो सं० २२६ में अग्नि ष्वात्तमृत जीव नहीं हो सकता है, अग्नि से किसी प्रकार भी जल जावें उन को भोजनादि देने से पुण्य लाभ होता है। तुम्हारे मरे हुवे पितर जब आसन पर बैठते हों तो तुम उन से यह तो बूझ लिया करो कि आपने जहां शरीर

धारण किया है वहां अपने बेटे पोते पड़ोसियों से कह भी आये हो कि हम तौ श्राद्ध के सफ़ीने से बुलाये हुवे भोजन करने जाते हैं, हमारे शरीर को कहीं अर्थी पर धर कर राम राम सत्य मत कर बैठना और जौ के पिण्ड मत दे देना। कभी पूरी हलवा छोड़ हमारी पत्तलों पर जौ के पिण्ड ही पहुंच जावें। यहां कहीं मूंछ दाढ़ी मत मुंडवा बैठना, हम तौ एक घण्टे दो घण्टे में आ जायंगे। लाश को तैल में धरी रखना और सारे पड़ौसी उन के भूखे न रहैं कि ग्राम में मुर्दा पड़ा है भोजन कैसे करैं॥

२३७प्रश्न–ऋ० भा० भू० में स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निरुक्त शतपथादि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं फिर अग्निष्वात्त पद का शतपथ से विरुद्ध मन माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध अर्थ किया है सो मिथ्या क्यों नहीं और ऐसा करने से स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञा का खण्डन क्या नहीं हो गया। इस का तुम क्या जवाब रखते हो॥

२३७ उत्तर–प्रतिकूलता कैसे है, आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल ही तौ अर्थ है। अग्नि ने जिन के मुर्दे शरीर को

चाट लिया है यूं तौ साफ़ है ही नहीं, ज्ञानाग्नि से भी दग्ध होना पौराणिक मत में तौ लिखा है ॥ यथा—

कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं यथा ।
ज्ञानदग्धशरीराणाम् पुनर्दाहो न विद्यते ॥१॥

३८ प्रश्न—संस्कारविधि समावर्त्तनप्रकरण में लिखा है कि-" हाथ में जल ले अपसव्य और दक्षिण मुख होके (ओं पितरः शुन्धध्वम्) इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़े" तुम क्या इस से भी जीवतों को जलदान मानोगे। यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तौ (भूमि पर जल छोड़े) को काट कर (पिता को भूमि में लिटा के उस के मुख में जल छोड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो। क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से अब भी मरों का तर्पण मानना सिद्ध नहीं है ॥

२३८ उत्तर—समावर्त्तन संस्कार में दक्षिण को जल छोड़ना यदि मरे हुवे पितरों को ही पहुंचता है तौ क्या समावर्त्तन समय सब ब्रह्मचारियों के पिता माता मरजाने आवश्यक हैं ? क्योंकि जीवते माता पिता वाले को पितृकार्य वर्जित ही किया गया है। या कहीं यह लिखा है कि यदि पितर मर गये हों तौ जल छोड़े ॥

२३९ प्रश्न—संस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञविधि में (पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः) मन्त्र से एक ग्रास दक्षिण में रखने को लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किन को दिया जाता और दक्षिण में क्यों धरा जाता है। क्या इस से मृतश्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ॥

२३९ उत्तर—(पितृ०) यह मन्त्र है जैसे सोमाय स्वाहा इस मन्त्र से वेदीके दक्षिण भाग में आहुति देनी लिखी है ऐसे ही इस मन्त्र से दक्षिण में ग्रास है इस से क्या श्राद्ध के नौते के लालची एक टुकड़े ही पर सन्तोष कर लेंगे ॥

२४० प्रश्न—(आम्राश्चसिक्ताः पितरश्चतृप्ताएकाक्रिया-द्व्यर्थे करी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरों का तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के श्राद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उन के लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाथ में वेदपुस्तक लेके शपथ कर सकेगा कि वे मृत श्राद्ध के लिये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

२४० उत्तर—(आम्रा०) यह वाक्य महाभाष्य का कोई विधि नहीं बताता यदि किसी के पूर्वपक्ष का

ही श्लोक भाष्यकार ने लिखा हो, उत्तरपक्ष और ही हो। महाभाष्य के श्लोकों का प्रमाण मानोगे तो (एका-वृषः कम्बलपादुकाभ्याम्०) इस श्लोकानुसार बैलों को खड़ाऊं पहराना, नील की कोठी में लहसन का भाव, सभी मानने पड़ेंगे। क्या आप शपथपूर्वक कह सकते हैं कि आर्यसिद्धान्त का सम्पादन करते समय तक यह मन्त्र जो अब आप प्रस्तुत कर रहे हैं आपने नहीं देखे थे॥

२४१ प्रश्न—(तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते—अथर्व० १८। २। ४८) यहां से ऊपर प्रद्यौ नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं। और मन्त्र में कहे वे ही पितर हैं जिन के लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब क्या इस से जीवितों के श्राद्ध मानने का खण्डन नहीं होता॥

२४१ उत्तर—इस मन्त्र में प्रद्यौःलोक में पितरों का रहना सिद्ध होने से क्या हुवा, हम स्वयं वायुरूप पितरों को मानते हैं परन्तु यह कहां सिद्ध हुवा कि वह तीसरे लोक के पितर यहां उतर आते हैं और ब्राह्मणों के आगे धरे भोजन को जीम जाते हैं॥

२४२ प्रश्न–सिद्धान्तशिरोमणि पुस्तक को स्वा० द० ने प्रामाणिक माना है उस में लिखा है कि (ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । क्रतु भिस्तानि तुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् । क्या यह कन्या के सूर्य में होने वाले कनागतश्राद्धों के लिये आर्षप्रमाण नहीं है ॥

२४२ उत्तर–कन्यागतों में जीवित पितरों को वसु रुद्र आदित्य ब्रह्मवेत्ताओं को भोजन करावें या होम करें तो अच्छा है यह तो सब गुरु पूर्णिमा की गुरु पूजा के समान ही हुवा इस में मरे हुवों का तो नाम तक भी नहीं है ॥

२४३ प्रश्न–क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश होगया । इस से कर्ण राजा से पहिले कनागत श्राद्ध नहीं थे । क्योंकि जब सिद्धान्तशिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुवा तब कनागत श्राद्ध सनातन अनादिकाल से होने सिद्ध होने पर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं होगया । क्या अपनी ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन होजाने से अब भी लज्जित नहीं होगे ॥

२४३ उत्तर-स्वामी दयानन्दादि किसी आर्यविद्वान् ने भी कर्ण राजा की कथा नहीं कही, किसी अज्ञ ने (सो भी सनातनियों की लोकोक्ति सुन कर ही) ऐसा तर्क किया होगा। सो सनातनी चेलों को समझालो। यदि उन से भी सुनवादूं तौ भी लज्जित होगे या नहीं॥

२४४ प्रश्न-(श्राद्धे शरदः। पा० ४।३।१२। शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है। अर्थ यह है कि शरद् ऋतु नाम क्वार कार्त्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं। यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़ के शरद् ऋतु के खास श्राद्धों का प्रमाण होने से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्य से भी पहिले अति प्राचीन काल से चला आना सिद्ध नहीं है?

२४४ उत्तर-उत्तर देखो २४२ वही इस का भी जानो?

२४५ प्रश्न-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकता तो-

मृतानामिह जन्तूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
जीवतामिह जन्तूनां, वृथा पाथेयकल्पनम्॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध का फल मिल सकता है तो जीवित मनुष्य जब मुसाफ़िरी में जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उस की तृप्ति मार्ग में क्यों नहीं कर सकते। इस नास्तिक चार्वाक के और तुम्हारे मत में क्या भेद है । यदि कुछ भेद नहीं तो तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए॥

२४५ उत्तर—आपने इस दलील का उत्तर नहीं दिया॥

चार्वाक की श्राद्ध विषयक १ दलील को प्रस्तुत करने पर नास्तिक नहीं होसकते। वेद ईश्वर के न मानने पर नास्तिक होसकते थे । परन्तु पौराणिक तो बुद्ध देव को अवतार मानने पर भी नास्तिक नहीं होते यह आश्चर्य है॥

२४६ प्रश्न—तुम कहते हो कि मरे हुए पितादि को जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा उन के हाथ की रसीद नहीं आती तो फल पहुंचता है, यह कैसे मान लेवें। तब तुम से पूछा जाता है कि अपने किये शुभाशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में अपने को मिल जाता है, इस में क्या प्रमाण है। क्या इस में प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो।

जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्) क्यों नहीं मान लेते हो ॥

२४६ उत्तर—वेद स्मृति सब में स्वकर्मफलभोग को ही आवश्यक माना है। पुत्र दारा ज्ञाति कोई भी उस लोक में सहारा नहीं लगावेगा, ऐसा आर्ष प्रमाण से अपने कर्म की फलप्राप्ति मानते हैं। इसी से अन्य का किया कर्म अन्य को फलदायक नहीं मानते हैं॥

२४७ प्रश्न—तुम कहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुत्र यदि उन को दुःख से छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी। ईश्वर की इच्छा से विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारा ऐसा मन्तव्य है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुश्रूषा भी तुम को नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पिछले जन्म के कर्मों का जैसा २ शुभाशुभ फल ईश्वर ने उन को देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा डालने वाले तुम क्यो नहीं हुए। ऐसी दशा में जीवित माता पितादि की सेवा भी तुम को छोड़नी क्यों नहीं पड़ेगी॥

२४७ उत्तर-जीवित माता पिता के सुकर्मों से सुसन्तान होती है, अतः हम भी अपना कर्तव्य समझ उन के ही पूर्व कर्मानुसार सेवा करते हैं ॥

२४८ प्रश्न-यदि कहो कि अन्य के द्वारा प्रत्यक्ष में तो फल मिल सकता है, परोक्ष में नहीं। तब हम पूछते हैं कि तुम अपने निज घर स्त्री पुत्रादि की कोई वस्तु उठाते लेते समय क्या यह विचारते हो कि अन्य के वस्तु को लेने का अपराध हम को लगेगा। यदि नहीं विचारते और ऐसा कहते मानते हो कि स्त्री पुत्रादि का वस्तु अन्य का नहीं, किन्तु हमारा ही है। हमारे स्त्री पुत्रादि अन्य नहीं किन्तु हम सब एक ही हैं। तो पुत्रादि जो उस के अंश रूप हैं उन को क्यों कहते मानते हो ॥

२४८ उत्तर-घर की स्त्री, पुत्रादि भी यदि कोई पृथकता रखते हों तो हम उन की वस्तु नहीं उठा सकते हैं। यदि हम को वेदादि का प्रमाण मिल जाय कि पुत्र का दिया दान पिता के आत्मा को मिलेगा तो हम मान लेंगे। परन्तु हम को उस के विरुद्ध यही मिलता है कि स्वकर्म ही साथी है, अन्य नहीं ॥

२४९ प्रश्न—जब कि (आत्मा वै पुत्रनामासि) (आत्मा वै जायते पुत्रः) इत्यादि श्रुति और (गर्भो भूत्वेह जायते) (भार्या पुत्रः स्वका तनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दिखाई है, तब तुम फूटरूप भेद वा अन्य २ होने का झगड़ा क्यों लगाते हो ॥

२४९ उत्तर—यदि इन प्रमाणों के आधार पर पिता पुत्र को एक ही मानोगे तौ स्त्रीगमन में मातृगमन का दोष आवेगा। क्या कोई पुरुष भी पुत्र की माता (स्वस्त्री) को माता कह सक्ता है? इन प्रमाणों से पिता पुत्र का प्रेम वर्णित है, किन्तु आत्मा की एकता नहीं है ॥

२५० प्रश्न—क्या तुम पिता का अंश पुत्र को नहीं मानते हो। जब अवयवरूप है तौ हाथ मिहनत करके रोटी बनाता, मुख चबाने महीन करने में श्रम करता है पर हाथ कुछ भी नहीं खाता, मुख को स्वाद आता और पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूख निवृत्ति रूप मुख्य फल पेट को ही होता है तब अन्य हाथ के किये कर्म का फल पेट को क्यों पहुंचता है। क्या इन

हाथ मुख पेट में भी लड़ाई कराओगे। वा क्या यहाँ भी खण्डन करोगे॥

२५० उत्तर-हाथ पैर पेट का दृष्टान्त यों नहीं घटता कि उन सब अङ्गों का अधिष्ठाता एक ही जीव है पृथक् पृथक् नहीं। और जन्म से ही हाथ का काम रोटी बनाना है, खाना नहीं, पेट का काम खाना पचाना है, बनाना नहीं, तो क्या कभी इन में विपर्यय भी मानोगे? क्या पिता स्वकर्मोपार्जित फल नहीं पाता, केवल पुत्र के दिये श्राद्ध पर ही सदाकाल रहता है? जब जीवित पिता भी पुत्र के श्राद्ध से पेट नहीं भर सकता तब मर कर कैसे भर लेगा, तब उस में क्या कोई चुम्बक शक्ति हो जावेगी॥

२५१ प्रश्न-तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंचता तो यदि कोई राजा रईस दशलाख रुपये का किसी ख़ास के नाम वा सभा के नाम वसीयतनामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावर्त्त, वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें। और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों

का फल उस धनदाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा। यदि कर्त्ताओं को मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयतनामा किया उस को फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा। फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी क़ायदे से श्राद्धादिधर्म करने के लिये पिता अपने पुत्र को धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्रकृत श्राद्धादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा॥

२५१ उत्तर–राजा रईस को स्वयंदत्त दान का फल मिलेगा। यदि उस में न्यूनता नौकरादि करेंगे तो उन को स्तेय का बुरा फल मिलेगा॥

२५२ प्रश्न–जब उत्सर्गापवादादि वा सामान्य विशेष की व्यवस्था को माने विना वेदादि किसी शास्त्र का काम नहीं चलता तो अन्यकृत कर्म का फल अन्य को नहीं होता। इस को उत्सर्ग वा सामान्य कथन मानके विशेषांश में पुत्रादि सपिण्ड वा दौहित्रादिकृत श्राद्धादि का फल पितादि को पहुंचना अपवादरूप मानकर सब शास्त्रों का विरोध मिट जाता और व्यवस्था लगजाती है। ऐसा मान लेने में तुम्हारी क्या हानि है॥

२५२ उत्तर—यदि वेद में अपवाद मन्त्र दिखा दो तो हम मान लेंगे। आप की नौते की हानि न हुई चाहिये, परन्तु वेद में तो मृतक नौते का ज़िक्र तक भी नहीं ॥

२५३ प्रश्न—यदि तुम नास्तिकों के सामने प्रत्यक्षादि से श्राद्धादि को सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त श्राद्धादि के खण्डन का पाप अपने शिर लादते हो तो क्या उसी क़ायदे से तुम्हारे अन्य मन्तव्य वेदादि का खण्डन नहीं हो सकता ॥

२५४ प्रश्न—यदि तुम्हारा दावा हो तो अभ्युपगम सिद्धान्त को लेकर हम तुम्हारे वेदादि मन्तव्य का खण्डन करने का नोटिस तुम को देते हैं। तब क्या तुम वेद का मण्डन करने की शक्ति रखते हो ॥

२५३। २५४ उत्तर—यह तो आप का भी आत्मा मानगया कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से श्राद्ध सिद्ध नहीं हो सकता। वेदोक्त श्राद्ध है नहीं, पितृयज्ञ है, सो उस को हम मानते हैं, इस में पाप से शिर क्या लादना? प्रथम यज्ञोपवीत उतार दो तब नास्तिक बन शास्त्रार्थ करना, हम त्यार हैं॥

२५५ प्रश्न—जब स्वामी शंकराचार्य जी तथा कुमारिलभट्टादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के साथ

बड़े २ प्रबल शास्त्रार्थ करते हुये भी श्राद्धादि सत्कर्मों का त्याग वा खण्डन न किया तो नास्तिकों के भय से अपने वेदोक्त धर्म का त्याग करना क्या यह तुम्हारी निर्बलता नहीं है ॥

२५५ उत्तर—स्वामी शङ्कराचार्य ने अपने पिता के श्राद्ध में महामण्डल के महाब्राह्मण को जिमाया, यह आप नहीं दिखा सकते ॥

९—वर्णव्यवस्थाविषय ।

२५६ प्रश्न—गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था तुम मानते हो । जो स्वा० द० ने आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक में स्वभाव शब्द का अर्थ वस्तु के साथ नष्ट होना लिखा है सो वह स्वा० द० का लिखना मिथ्या है वा सत्य ॥

२५७ प्रश्न—यदि मिथ्या कहो तो क्या स्वा० द० मिथ्यावादी सिद्ध नहीं हो गये ? यदि सत्य कहो तो ब्राह्मणादि का स्वभाव मरण से पहिले बदल ही नहीं सकता, तो तुम ब्राह्मणादि का शूद्रादि होना वा शूद्रादि का ब्राह्मणादि होना कैसे मान सकोगे ॥

२५६ । २५७ उत्तर—स्वभाव परमाणुजन्य शरीरानुसार ही तो होता है । कुछ वर्षों में जब परमाणु ही शरीर

के बदल जाते हैं तब तज्जन्य स्वभाव बदल जाना कौन बड़ी बात है। बस गुण कर्म स्वभाव से ही वर्णव्यवस्था ठीक हो गई। यदि तुम जन्म से मानते हो तो कोई जन्म का ब्राह्मण क्षत्रिय ईसाई कैसे हो सकता है वा नहीं ? स्वामी जी का कथन सत्य है ॥

२५८ प्रश्न—तुम्हारे मत में जन्म से कोई ब्राह्मणादि नहीं किन्तु पढ़ लिख जाने पर २५ वर्ष की आयु में परीक्षा होने पर जो २ वर्ण ठहरे वह २ माना जाय तो (ब्राह्मणोऽस्य मुख०) इत्यादि वेदमन्त्र पर स्वा० द० ने उत्पत्ति के साथ ब्राह्मणादि शब्द क्यों लिखा। क्या वेद बनाते समय ईश्वर भी भूल गया था ॥

२५८ उत्तर—सृष्टि के आरम्भ में तो आप को भी गुण कर्मानुसार ही वर्णव्यवस्था माननी पड़ेगी क्योंकि १ ब्रह्मा से हुई प्रजा का सब १ वर्ण ही मानना पड़ेगा। उस समय तो विना पढ़ाये ही ज्ञान बल प्राप्त हुवा है फिर (ब्राह्मणोऽस्य मुख०) इस वेदमन्त्र पर क्यों लघुशङ्का कर पाप के भागी बनते हो। ऐसी भूल फिर न करना ॥

२५९ प्रश्न—स्वा० द० ने वा तुम ने कैसे वा किस प्रमाण से जाना कि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे, फिर

तपोबल से ब्राह्मण हो गये। यदि वाल्मीकीय रामायणादि से कहो तो वैसा लेख वेद में न होने से वह वेदविरुद्ध क्यों नहीं। और क्या विश्वामित्र सम्बन्धी सब इतिहास तुम मानते हो। यदि अपने मत से विरुद्ध को असम्भव कहो तौ हमारे मत से विरुद्ध क्षत्रिय से ब्राह्मण होना भी असम्भव क्यों नहीं हो सकता ॥

२५९ उत्तर—विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना इतिहाससिद्ध है। आप को क्या हक़ है ऐसी कल्पना करें। क्या कोई मुसलमान भी हदीस में आये बाबा आदम की पसली से हव्वा बनने से नकार कर सकता है। विश्वामित्र स्वयं अपने बल पर पछताये और कहा (दिग्बलं क्षत्रियबलम्)

२६० प्रश्न—जब इतिहास पुराणों की कथा मानने पड़ी तौ महाभारत में लिखी विश्वामित्र की उत्पत्ति क्यों नहीं मान लेते। यदि नहीं मानते तौ विश्वामित्र की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इस के लिये क्या तुम कुछ प्रमाण रखते हो। यदि नहीं रखते तौ विश्वामित्र का जन्म से क्षत्रिय होना मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हुवा ॥

२६० उत्तर—विश्वामित्र के माता पिता क्षत्रिय थे,

अतः जन्म के क्षत्रिय थे । यदि आप महाभारत को नहीं मानते तो हम अन्य प्रमाण दें ॥

२६१ प्रश्न–महाभारत में जो विश्वामित्र जी का जन्म से ब्राह्मण होना लिखा है, उस को स्वा० द० ने देखा वा सुना होता तो विश्वामित्रको जन्मसे क्षत्रिय क्यों लिखते। इस से स्वा०द० का अज्ञ होना क्या सिद्ध नहीं होता ॥

२६१ उत्तर–महाभारत में विश्वामित्र का जन्म से ब्राह्मण होना नहीं लिखा, यह आप ७ जन्म में भी नहीं दिखा सकते। इसी से आप विद्वानों में अज्ञ कहावेंगे ॥

२६२ प्रश्न–क्या मतङ्ग का तपोबल से ब्राह्मण हो जाना जैसा स्वा० द० ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, उस को तुम किसी प्रमाण से सिद्ध कर सकते हो। जब सत्य नहीं ठहरा सकते तो स्वा०द० के ऐसे मिथ्या लेख से लज्जित क्यों नहीं होते ॥

२६२ उत्तर–मतङ्ग का तपोबल से ब्राह्मण होना हम सब प्रकार सिद्ध कर देंगे क्योंकि धर्मपुत्र युधिष्ठिर (जो भीमसेन का बड़ा भाई था) ने भीष्म जी से बूझा है कि मतङ्ग कैसे ब्राह्मण हो गया। इस प्रश्न से ही ज्ञात होता है॥

२६३ प्रश्न—जब महाभारत अनुशासन पर्व अ० २७ आदि में साफ़ लिखा है कि मतङ्ग ने बहुत सा तप करने पर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं कर पाया। देवराज इन्द्र ने मतङ्ग का ब्राह्मण होने का वर मंजूर नहीं किया तौ मतङ्ग के ब्राह्मण होजाने में क्या प्रमाण है। यदि कोई प्रमाण है तौ आर्यसमाजी बतावें। जब प्रमाण नहीं है तौ सत्यार्थप्र० के मतङ्ग के ब्राह्मण हो जाने के लेख पर हरताल क्यों नहीं फेर देते॥

२६३ उत्तर—महाभारत के सब अध्याय देखे होते तौ ऐसा न कहते। क्या राजा युधिष्ठिर ने झूंठ मूंठ सवाल कर दिया कि मतङ्ग कैसे ब्राह्मण हुवा। एक इन्द्र भीमसेन के छोटे भाई अर्जुन का पिता होने से हठधर्मी से मतङ्ग को ब्राह्मण न माने तौ क्या है, सारा संसार उसे ब्राह्मण मान गया है। देखो हमारा लेख वेदप्रकाश वर्ष १४ मास १२ अब अपने लेख पर हरताल क्यों नहीं धरते हो॥

२६४ प्रश्न-स्वा०द० ने स०प्र० में लिखा है कि "मतङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण होगये थे" सो क्या यह बिलकुल मिथ्या नहीं है। मतङ्ग को मातङ्ग अशुद्ध लिखना, जो ऋषि नहीं था उस मतङ्ग को ऋषि लिखना।

मतङ्ग चाण्डाल कुल में भी नहीं था किन्तु ब्राह्मण कुल में पैदा हुवा था, उस को चाण्डाल कुल लिखना, क्या स्वामी द० ने सभी बातें मिथ्या लिखने का ही ठेका लिया था। और क्या तुमने मिथ्या बातों को मानने का ठेका लिया है। क्या तुम लोगों में कोई भी माई का लाल ऐसा दम रखता है कि जो किसी सभा में मतङ्ग विषय की उक्त तीनों मिथ्या बातों को सत्य ठहराने का साहस कर सके॥

२६४ उत्तर—सत्य बात छिपाये नहीं छिपती, मतङ्ग का मातङ्ग छपना संशोधक की भूल है। १ मात्रा का फ़र्क है। क्या मतङ्ग चाण्डाल कुल में नहीं, ब्राह्मण कुल में पैदा होना आप सिद्ध कर सकते हैं? यदि वह ब्राह्मण कुल में पैदा हुवा था तो इन्द्र ने उसे ब्राह्मण क्यों नहीं माना? पूर्वज राजा मिथ्या लेखकों के हाथ कटा देते थे, अब आप के प्रारब्ध से दयावान् ब्रिटिशराज्य है। क्या तुम इन पूर्वापर अशुद्ध बातोंको शुद्ध ठहरा सकते हो॥

२६५ प्रश्न—जब महाभारत के अनुशासन पर्व में साफ़ लिखा है कि मतङ्ग की माता ब्राह्मणी थी और प्रसिद्ध पिता भी ब्राह्मण था परन्तु नाई पुरुष से गुप्त व्यभिचार

होजाने पर मतङ्ग अपनी ब्राह्मणी माता में पैदा हुवा था। सो यदि मतङ्ग को चाण्डाल कहना चाहो तौ क्या किसी प्रमाण से चाण्डाल के गुण कर्म मतङ्ग में सिद्ध कर दोगे। यदि नाई से ब्राह्मणी में पैदा होने के कारण मतङ्ग को चाण्डाल कहोगे तो जन्म से वर्णव्यवस्था मानना क्या तुम्हारे गले न पड़ जायगी॥

२६५ उत्तर—यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्यां शूद्रतश्च यः। द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ०

इस गरुड़पुराण के लेख को भी आपने मानना छोड़ दिया? जब नाई से पैदा होना गधे पर चढ़ना महाभारत में स्पष्ट लिखा है और ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पत्ति भी आप ही बताते हैं तब फिर भी मतङ्ग के वर्ण का फ़ैसला न कर सके। अब गुण कर्म स्वभावानुसार ही वर्णव्यवस्था आपके गले भी पड़ी। क्या अब भी किसी नाई के वीर्य से ब्राह्मणी के बच्चे को ब्राह्मणकुलोत्पन्न ब्राह्मण ही कहा करते हो॥

२६६ प्रश्न—स्वा० द० ने स० प्र० में लिखा है कि "महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रियवर्ण थे" सो क्या तुम

लोग महाभारत के किसी प्रमाण से स्वा० द० के उक्त लेख को सत्य कर सकते हो । यदि नहीं कर सकते तो उक्त लेख को मिथ्या मानने में आगा पीछा क्यों करते हो॥

२६६—उत्तर—हम प्रति समय स्वामी जी के लेख को महाभारत के अनुकूल होना सिद्ध कर सकते हैं । महाभारत में (वीतहव्यश्च राजर्षिः श्रुतोमे विप्रतां गतः) भी लिखा है कि वीतहव्य राजा ब्राह्मण हो गया । क्या तुम इस का कुछ भी उत्तर रखते हो ॥

२६७ प्रश्न—स्वा० द० ने स० प्र० में लिखा है कि "जाबाल ऋषि अज्ञात कुल से ब्राह्मण हो गये थे" सो क्या यह युक्तिविरुद्ध अयुक्त बात नहीं है । क्या कोई अपने कुल गोत्र का नाम नहीं जानता हो तो इतने ही से अन्य कुल गोत्र का हो जाता है । क्या जो अपने बाप दादों के नाम न जानता हो वह अन्य किसी का सन्तान हो जायगा ॥

२६७ उत्तर—जाबाल ऋषि का स्वयं इज़हार है कि वह अज्ञातकुल था । क्या तुम जाबाल के पिता का नाम अब बता सकते हो । जो कुल गोत्र बाप दादा का नाम न बतावे उसे अज्ञात कुल ही लिखना चाहिये, सो स्वामी दयानन्द ने ठीक लिखा है ॥

२६८ प्रश्न—छान्दोग्योपनिषद् में जब लिखा ही नहीं कि जाबाल ब्राह्मण नहीं था वा अन्य कोई क्षत्रियादि वर्ण था तब सिद्ध है कि जाबाल ब्राह्मण ही था, केवल गोत्र का नाम नहीं जानता था, गोतम ऋषि ने उस के स्वाभाविक जन्म से आये गुणों द्वारा जान लिया कि यह वास्तव में जाति से वा जन्म से ही ब्राह्मण है। ऐसी दशा में जाबाल के विषय में स्वा० द० का लिखना सर्वथा ही मिथ्या क्यों नहीं है॥

२६८ उत्तर—छान्दोग्य में स्पष्ट है कि उस की माता ने बूझने पर कहा कि मुझे तेरे पिता का नाम ज्ञात नहीं। गोतम ने स्वाभाविक गुण अर्थात् गुणकर्मानुसार ब्राह्मण मान लिया। इस से भी बढ़कर स्वामी जी के लेख को गवाही की आवश्यकता रही? यह जादू आप के शिर ही बोल उठा॥

२६९ प्रश्न—(स्वाधायेन०) इत्यादि मनु के श्लोक में आये (ब्राह्मी) पद का अर्थ स्वा० द० ने स० प्र० में ब्राह्मण का शरीर किया है। सो (ब्राह्मोऽजातौ) इस पाणिनीय सूत्र के विद्यमान होते भी पण्डितों के सामने स्वा० द० के अर्थ को व्याकरणानुसार क्या तुम समाजी

लोग सत्य सिद्ध कर दोगे। यदि ऐसी शक्ति रखते हो तो कटिबद्ध क्यों नहीं हो जाते॥

२६९ उत्तर–स्वामी दयानन्द ने आत्मोपद वर्णवाचक लिखा है। आप अष्टाध्यायी के अजातिवाचक सूत्र को लिखते हैं, यह आप की भूल दूसरी बहुत बड़ी है। महाभारतादि ग्रन्थों के मानते हुवे आप कदापि जन्ममात्रसे वर्णव्यवस्था सिद्ध नहीं कर सकते। ऐसी शक्ति रखते हों तो कमर कसकर तैयार हो जावें। हम भी तैयार हैं॥

२७० प्रश्न–समाजी उपदेशक तु० रा० ने जाबाल की माता को परिचारिणी पद आजाने पर जो व्यभिचारिणी लिखा था सो क्या कोई भी समाजी छान्दोग्योपनिषद् के किसी भी शब्द से वा वाक्य से अथवा परिचारिणी पद के अर्थ से जाबाला को व्यभिचारिणी सिद्ध करने की शक्ति रखता है। जब कि व्यभिचारिणी लिखना सरासर झूठ है तो ऐसे शुद्धार्थदूषक अपराधी को प्रायश्चित्त क्यों नहीं कराते॥

२७० उत्तर–परिचर्या नाम पास रह सेवा करने का है। परिचारिणी पास रहने वाली और पुत्र पैदा करले, उस के बाप के नाम की भी ख़बर न हो तो

भी व्यभिचारिणी न हो। यह आप की बुद्धिमानी है। क्या अब सनातनियों के भी ऐसी स्त्री पतिव्रता हैं जो सन्तान पैदा करने वाले पति का नाम धाम न जानती हों। उन स्त्रियों की आप आरती क्यों नहीं उतारते॥

२७१ प्रश्न—जो २ ब्राह्मणादिवर्ण के मनुष्य ईसाई मुसलमानादि रूप से पतित हो जाते हैं उन के लिये स्वा०द० के मन्तव्यानुसार यह क्यों नहीं मान लेते कि जिस में स्वाभाविक शुद्ध ब्राह्मणपन है उस का वह स्वभाव एक ही जन्म से जब नहीं बदल सकता तो पतित हो जाने वाला वर्णसंकरादि दोषयुक्त होने के कारण पूर्व से ही पतित था॥

२७१ उत्तर—आप का ही स्वभाव बदल गया कि स्वामी दयानन्द के शिष्य होते हुवे २० वर्ष तक वेदधर्म की सेवा कर फिर फिसल गये और मद्य मांस का प्रचार करने लगे। क्या यह स्वभाव आप में पूर्व जन्म से ही विद्यमान था। जो आगे २ मुसलमान ईसाई हुये उन के पूर्व जीवन समय में खान पान से भी आप लोग अशुद्ध क्यों नहीं हो जाते। जब स्वाभाविक ज्ञान जन्म

से ही मानते हो तो जो ईसाई मुसलमान अब शुद्ध हो गये हैं, वह जन्म के ही वैदिक मानने पड़ेंगे, फिर उन के हाथ का भोजन करने में क्यों संकोच करते हो ॥

२७२ प्रश्न—जब कि अन्य स्वाभाविक वस्तुओं का स्वभाव बदलते नहीं दीखता (जैसे बहुत काल जल में रहने पर भी पत्थर का अग्नि नष्ट नहीं होता, काला कम्बल कैसा भी धोने पर जब सफ़ेद नहीं हो सकता) तो युक्ति से विरुद्ध ब्राह्मणादि के स्वभाव का बदलना तुम क्यों मान लेते हो ॥

२७२ उत्तर—आप दूसरा दृष्टान्त क्यों नहीं देखते । बहुत से रसों में अभ्रक जैसों में अग्नि से उष्णता हो जाती है । श्वेत कम्बल को चाहे जैसा रंगलो । इसी प्रकार बाल्यावस्था में चाहे जैसा वर्ण बदल सकते हैं ॥

२७३ प्रश्न—जब कि मनु जी अ० १० में साफ़ २ लिखते हैं कि—

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥

पिता का माता का वा दोनों का कोई न कोई स्वभाव गुण वा चिन्ह सन्तान में ऐसा अवश्य आता

है कि जिस की ठीक २ परीक्षा की जाय तो माता पिता का पता अवश्य लग सकता है। व्यभिचारादि की रीति से वा धार्मिक शास्त्रोक्त रीति से पैदा हुआ सन्तान अपने कारण की निकृष्टता वा उत्तमता को किसी प्रकार छिपा ही नहीं सकता। क्या इस के अनुसार भी तुम जाति से वर्ण नहीं मानोगे॥

२७३ उत्तर—मनु जी ठीक कहते हैं। अधिकतः ब्राह्मणादि से वही २ वर्ण की योग्यतायुक्त सन्तान होती हैं। किसी विशेष कारणवश विपर्यय भी होना सम्भव है, असम्भव नहीं, हुवा भी है॥

२७४ प्रश्न—(अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते) जब मनु जी कहते हैं कि गेहूं बोने पर जौ वा जौ बोने पर गेहूं पैदा हो जायं, ऐसा हो नहीं सकता, वा यों कहो कि लंगड़ा आम के बीज से खटुआ टिर्रा छोटा आम और खटुआ बीज से लङ्गड़ा आम पैदा हो नहीं सकता, वा हंसराज चावल के बीज से साठी वा साठी के बीज से हंसराज चावल पैदा हो ही नहीं सकते। तब दृष्टान्त और प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा युक्ति से विरुद्ध तुम लोग क्यों मानते हो कि ब्राह्मणी ब्राह्मण माता

पिता से हुआ सन्तान भी शूद्र हो सकता वा शूद्र से ब्राह्मण हो सकता है ॥

२७४ उत्तर-मनुष्य के बीज से मनुष्य होता है, पशु से पशु। यह तो ठीक है परन्तु यदि कुछ रसायन शास्त्र पढ़ा देखा होता तो आम, चावल का दृष्टान्त न देते। यदि किसी माली से भी बूझलेते तो ज्ञात होता कि बड़े २ आम टैंटन हो जाते हैं। हंसराज के गेहा हो जाते हैं। क्षत्रिय वैश्य ईसाई हो जाते हैं॥

२७५ प्रश्न-क्या आर्यसमाजी बनने वाले मूर्ख ब्राह्मणादि को तुमने सार्टीफ़िकट देकर गुणकर्मानुसार शूद्र बना दिया है। यदि नहीं बनाये तो तुम्हारा कहना मिथ्या क्यों न हुवा। तथा जिन २ ईसाई मुसलमान चमार भङ्गी आदि को तुमने शर्मा वर्मा बनाया है। क्या वे सब वेदादि शास्त्रों के जानकार पूर्णविद्वान् हो गये हैं। यदि नहीं हुवे तो किन २ गुण कर्मों से ब्राह्मणादि हुवे ॥

२७५ उत्तर-अभी तक वर्णव्यवस्थार्थ कोई प्रबन्ध नहीं है। क्या तुम सनातनी बोझे ढोने वाले ब्राह्मणों को

शास्त्रियों के समान पूजा करते हो, क्या उन से सेवा कर्म नहीं कराते ?

प्रश्न २७६—क्या तुम्हारे मत में खाने पीने के साथ धर्माधर्म का सम्बन्ध है ? वा नहीं। यदि है कहो तो भङ्गी चमार मुसल्मानादि को समाजी बनाके उन के हाथ का बना भोजन वा उन के साथ क्यों खाते हो। क्या उन के शरीर की बनावट के स्वाभाविक अशुद्ध परमाणुवों को बदलके तुम शुद्ध कर सकते हो। जब नहीं बदल सकते तो उन के संसर्ग से तुम्हारा धर्म नष्ट क्यों न होगा। और यदि नहीं कहो तो क्या भङ्गी चमारादि को रसोइया बनालोगे ॥

उत्तर २७६—खानपान और भक्ष्याभक्ष्य दो बात हैं। मद्यमांसादि अभक्ष्य हैं परन्तु कच्ची पक्की रोटी का भेद शास्त्र में नहीं है। पञ्जाब में सनातनधर्मी भी कहारों के हाथ की रोटी दाल खाते हैं। यू०पी० में कच्ची पक्की का चौका है। दक्षिण में कच्ची पक्की सब कपड़े उतार के खाते हैं। पूर्व में कुछ और ही दशा है। इसी प्रकार अपने २ स्वभावानुसार चाहे जैसे खावें। हां भोजन सात्विक हो। परन्तु सनातनी भाई जगन्नाथ जी के

भात का ध्यान दें। वहां भीमसेन जी और महामण्डल व्यवस्था करें ॥

प्रश्न २७७—क्या तुम्हारे मत में शूद्र तमोगुणप्रधान नहीं है। यदि है कहो तौ उस के बनाये भोजन में संसर्ग दोष से आने वाले तमोगुण का निषेध किस युक्ति से करोगे। जब निषेध न कर पाया तौ तुम भी तमोगुणी होने से कैसे बचजाओगे ॥

२७७ उत्तर—सनातनधर्मियों के हलवाइयों के यहां बने भोजन में तमोगुण जैसे नहीं आते, ऐसेही नहीं आते ॥

२७८ प्रश्न—(आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः) क्या ऐसा प्रमाण तुम वेद में दिखा दोगे। जब वेद में इन का मूल ही नहीं तौ वेदविरुद्ध क्यों नहीं मान लेते। अर्थात् हम इन को वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण कहेंगे तब कैसे सत्य ठहराओगे। और रोटी दाल भात बनाना पकाना इस प्रमाण से कैसे सिद्ध करोगे ॥

२७८ उत्तर—वेदमन्त्र नहीं तौ वेद में कहीं यह भी नहीं लिखा कि ब्राह्मणातिरिक्त के हाथ का भोजन न करें। अतः (विरोधे त्व०) प्रमाणानुसार वेदानुकूल है ॥

२७९ प्रश्न—संस्कार नाम शुद्ध करने का है तब धोबी

भी तौ कपड़ा धोकर शुद्ध करता है । मट्टी के बर्त्तनों को कुम्हार बनाता, लुहार लोहे को अग्नि में धोंक २ कर शुद्ध करता, चांदी, सोना, कांसी, पीतल, तांबा इत्यादि का भी आर्याधिष्ठित सुवर्णकारादि संस्कार करते हैं । ऐसा अर्थ घट सकने पर रोटी बनाने का अर्थ कैसे कर सकोगे॥

२७९ उत्तर-संस्कार नाम मनु के (संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता०) इस के अनुसार तथा प्रकरणानुसार वहां रोटी बनाने का सिद्ध है ॥

२८० प्रश्न-क्या सखरे निखरे के भेद को तुम नहीं मानते हो। यदि हां कहो तौ स्मृतियों में कहा भक्ष्याभक्ष्य विचार मानने से कैसे बचोगे। यदि नहीं कहो तौ क्या कौवा,कुत्ता,भङ्गी,चमार आदि की छुई रोटी खालोगे ॥

२८० उत्तर-सखरा निखरा मनु आदि स्मृतियों में नहीं है । हां अपवित्र के दोष से संसर्ग दोष मानते हैं॥

२८१ प्रश्न-यदि मांस अभक्ष्य है तौ स्वा०द० ने पहिले स०प्र० में उस का होम क्यों लिखा है। और मांस किस युक्ति से अशुद्ध है । यदि हिंसा दोष से कहो तो स्वा०

द० ने कस्तूरी को अच्छा ग्राह्य क्यों लिखा है । क्या हिंसा के विना कभी कस्तूरी मिल सकती है ॥

२८१ उत्तर–मांस अभक्ष्य है, हिंसाप्राप्य भी है। कस्तूरी स्वयं मृत मृग की मिल सकती है॥

२८२ उत्तर–बाज़ार के घी दूध गुड़ चीनी की भीतरी संभाव्य अशुद्धियों के दृष्टान्त से क्या स्वा०द० ने स०प्र० में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कोई घी दूध आदि स्वयं शुद्ध रीति से बनाके वा सामने बनवाके खा सकता हो तौ भी न खावे । अथवा क्या यह मतलब है कि अदृष्ट परोक्ष अशुद्धि से सर्वथा न बच सके तौ जान बूझके वा सामने देखी हुई अशुद्धियों से भी न बचा करे । यदि ऐसा छोटा विचार नहीं है तौ ऐसा दृष्टान्त क्यों लिखा ॥

२८२ उत्तर–यथासम्भव शुद्धि करनी चाहिये, इस का विरोध स्वामी जी ने नहीं किया ॥

२८३ प्रश्न–क्या मैला पड़ २ के अशुद्धि में पैदा होने वाले आलू गोभी तरबूज़ ख़रबूजादि बुद्धिनाशक वस्तुओं का खाना समाजियों ने छोड़ दिया है । वा क्या इन के न खाने का उपदेश किया जाता है। ऐसा नहीं करते तौ

क्या स० प्र० में लिखे (अमेध्यप्रभवाणि च) को समाजी लोग नहीं मानते हैं॥

२८३ उत्तर-अमेध्यप्रभव पदार्थों को सनातनी भी नहीं खाते हैं क्या? जहां तक हो सके न खावें। शुद्ध स्थानीय पदार्थ खावें॥

२८४ प्रश्न-(अन्नमयꣳहि सोम्य मनः) छान्दोग्य में लिखा है कि अन्न का सारांश मन बनता है। यदि अशुद्ध पदार्थों को खाया जाय तो क्या अशुद्ध मन नहीं बनेगा। और मन की मलिनता ही क्या सब पापों का कारण नहीं है, तब अभक्ष्य के खाने पीने से धर्म का नाश होना क्यों नहीं मानते हो॥

२८४ उत्तर-हम अभक्ष्य बुद्धिविनाशक नशीली वस्तुओं को अखाद्य ही समझते हैं। परन्तु आप के सनातनी देवी देवता सब खाते हैं। उन के भक्तों की बुद्धि तभी तो बिगड़ी है॥

२८५ प्रश्न-यदि तुम्हारा यही मत है कि खाने पीने के पदार्थों से धर्म भ्रष्ट नहीं होता तो क्या विदेशी चीनी को भी भक्ष्य मानोगे। और जब आपत्काल में भक्ष्याभक्ष्यादि की मर्यादा न रहने से हमारे शास्त्र भी धर्म

हानि नहीं कहते तब वैसे दृष्टान्तों से तुम निर्विघ्न काल में भी भक्ष्याभक्ष्य की मर्यादा क्यों छुड़ाना चाहते हो ॥

२८५ उत्तर—हम आर्य विदेशी चीनी आदि को अभक्ष्य अवश्य समझते हैं। न हम मर्यादा छुटाते हैं। हां आप के भगवान् तक को मन्दिरों में विलायती चीनी चढ़ चुकी है ॥

२८६ प्रश्न—ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के और वेदों के अनुकूल हो वह सत्य और उस से विरुद्ध असत्य है। स्वा० द० का लिखा परीक्षा का यह पहिला नियम है। सो क्या यह नियम वेदानुकूल है वा नहीं । यदि है कहो तो दिखाओ, किस वेद के किस मन्त्र से यह नियम लिया गया है। यदि नहीं कहो तो तुम्हारे वेद-विरुद्ध नियम को कौन मान लेगा । और वेदविरुद्ध को तुम क्यों मानते हो, इस का जवाब क्या है ॥

२८६ उत्तर—अब आप सनातनधर्म में यह नियम पास करदें कि ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के और वेदों के अनुकूल को असत्य और विरुद्ध सत्य है। फिर देखो कि किस का नियम सत्य है ॥

२८७ प्रश्न—ईश्वर के गुण सर्वज्ञत्वादि हैं उस से

विरुद्ध तुम अल्पज्ञ क्यों हुए। ईश्वर के कर्म, संसार की उत्पत्ति स्थिति प्रलय हैं। उस के अनुकूल उत्पत्ति आदि तुम क्यों नहीं करके दिखाते, ईश्वर का स्वभाव सम, निर्दोष, अनिद्र, अस्वप्न है, उस से विरुद्ध तुम विषम दृष्टि वाले, काम क्रोधादि दोषयुक्त, और सोने वाले क्यों हुए। क्या तुम्हारे वा संसार भर के गुण कर्म स्वभाव उक्त रीति से विरुद्ध नहीं हैं। जब हैं तो क्या सब को असत्य मानोगे ॥

२८७ उत्तर—भी० से० जी के सनातनधर्म का ईश्वर अल्पज्ञ है। क्योंकि सीता की ख़बर रामावतार में न रही कि कहां है, रुदन किया। ईश्वर जन्म स्वयं लेता है। ईश्वर गोपीगण के माखन और वस्त्र चुराता है। सोता है। नित्य ठाकुरद्वारों में सुलाने को पलंग बिछा कर तोशक तकिये लगा कर (आयताभ्यां विशालाभ्यां विमलाभ्यां दयानिधे। करुणापूर्णनेत्राभ्यां कुरु निद्रां जगत्पते!) पढ़ते हैं कि हे ईश्वर! सो जाओ "कामी कामकलानिधिः" भी लिखा है। क्या इस शयनादि को अब छोड़ दोगे?

२८८ प्रश्न—यह पांच प्रकार की परीक्षा ही अब

वेदानुकूल तुम सिद्ध नहीं कर सकते तो इस वेदविरुद्ध मिथ्या प्रलाप का त्याग तुम क्यों नहीं करते ॥

२८८ उत्तर–पांचों प्रकार परीक्षा बुद्धिमान् शास्त्र-वेत्ता सब मानते हैं। यह वेदानुकूल है। आंखमिचोनी विना सोचे समझे मानना आप का काम है तो तर्क क्यों करते हो ॥

२८९ प्रश्न–दूसरी परीक्षा यह है कि सृष्टिक्रम के अनुकूल सत्य, उस से विरुद्ध असत्य है। जैसे माता के विना सन्तान का उत्पन्न होना। सृष्टि नाम उत्पत्ति का क्रम कहां से लोगे। यदि बीच से लेना कहो तो उस के लिये वेद का प्रमाण क्या है। यदि आदि से कहो तो पहिले २ हुए मनुष्यों के नाम बताओ। यदि पहिले २ माता पिता के विना अनेक मनुष्य रच दिये गये तो उसी क्रम से विना माता पिता के सन्तानों का होना सृष्टिक्रम के विरुद्ध क्यों नहीं है ॥

२८९ उत्तर- सृष्टिक्रम का अर्थ आप नहीं समझे। क्रम उसी को कहते हैं जो सिलसिला चलता है। बस फिर सृष्टि के आरम्भ की शङ्का करना बुद्धि शून्यता का काम है ॥

२९० प्रश्न (स० प्र० ८ समुल्लास में) स्वा० द० ने आदि सृष्टि के मनुष्य युवावस्था में हुए लिखे हैं। सो यह बात क्या सृष्टिक्रम से विरुद्ध तथा असम्भव नहीं है। क्या असम्भव काम ईश्वर कर सकता है। क्या तुम युवावस्था में उत्पन्न होते किन्हीं को दिखा दोगे ॥

२९० उत्तर—सृष्टि के आरम्भ में सृष्टिक्रम वह कहाता है जो क्रम सृष्टि की उत्पत्ति का पूर्व सृष्टियों में रहा हो। यदि आप कभी हम से सृष्टि के आरम्भ में बूझोगे तो दिखा देंगे। ईश्वर करे आगामी कल्प के आदि में आप फिर आर्यसमाज के शिष्य बन कर मनुष्य जन्म पावें। यह प्रार्थना नित्यप्रति प्रतिजन्म में करते रहना ॥

२९१ प्रश्न—सृष्टिक्रम से तुम नंगे पैदा होते हो तब पीछे बड़े होने पर सृष्टिक्रम से विरुद्ध कपड़े क्यों पहनते हो। अर्थात् अब नंगे क्यों नहीं हो जाते। और पढ़ना भी सृष्टिक्रम नहीं है तो पीछे से पढ़ने में शिर-पच्ची क्यों करते हो ॥

२९१ उत्तर—सृष्टि के आरम्भ से वेदभगवान् में आज्ञानुसार (युवा सुवासा०) इत्यादि वचनों ने हमें वस्त्र पहरने का सदुपदेश किया है। और वेदोपदेश से गुरु

शिष्यभावेन पढ़ना पढ़ाना चला ही आया है, अतः वस्त्र पहनते और पढ़ते हैं ॥

२९२ प्रश्न—यदि सृष्टिक्रम का अभिप्राय यह मानते हो कि जैसा क्रम अब दीख पड़ता है, माता पिता के विना सन्तान नहीं होते, पहिले भी नहीं हुवे । तौ क्या तुम्हारे ही कहने से तुम्हारा खण्डन नहीं हो गया कि आदि सृष्टि में विना माता पिता के अनेक मनुष्य युवा २ पैदा हो गये थे । जब इस में वेद का प्रमाण नहीं, न किसी अन्य ग्रन्थ का प्रमाण है तौ स्वा० द० की युक्तिविरुद्ध मनगढ़न्त को मिथ्या क्यों नहीं मान लेते ॥

२९२ उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर वही है जो २८९। २९० में दे चुके हैं ॥

२९३ प्रश्न—तीसरी परीक्षा का उदाहरण स्वा० द० ने ३ समुल्लास में आप्त सत्यवादियों के उपदेशानुकूल सत्य और उस से विरुद्ध असत्य लिखा । सो क्या आप्त एक दयानन्द ही हुवे वा अन्य भी कोई हुवा है । जब कि सैंकड़ों ऋषिमहर्षि आप्त हुवे तौ उन सभी के उपदेश से विरुद्ध नया कल्पित मत स्वा० द० ने क्यों चलाया ॥

२९३ उत्तर—आप्तवचन वेदानुकूल युक्तियुक्त हों तौ सब मान्य हैं। सर्वत्र ऋषि मुनियों के वाक्य सत्य माने हैं।

(या वेदबाह्याःस्मृतयो०) मनु के कथनानुसार ही स्वामी जी का भी सिद्धान्त है। हां "लोकाः प्रमाणम्" को स्वामी जी ने नहीं माना है॥

२९४ प्रश्न-यदि एक ईश्वर को ही आप्त कहो और उस के उपदेश वेद के अनुकूल को सत्य मानो तो क्या उल्लुओं का पलवाना, स्थूल गुदा से अन्धे सांपों का पकड़वाना, बकरे की चिकनाई का होम करना इत्यादि ईश्वर का उपदेश आप्तोक्त है॥

२९४ उत्तर-आप को वेद आप्तोपदेश ज्ञात नहीं होता तो उल्लू मरवाने के आर्डर जारी करदो। अन्धे सांप अपने घरों में खुले छोड़ दो। बकरों की तो वपा तक आपके बड़े २ यज्ञों में चढ़ती है ही, वही याद आती है॥

२९५ प्रश्न-चौथी परीक्षा आत्मा नाम अपने अनुकूल प्रतिकूल के तुल्य सब के सुख दुःखादि को समझना। क्या इस से विरुद्ध स्वा० द० ने संसार भरके मतों को बुरा नहीं कहा, क्या व्यासादि महायोगी सिद्धों को कसाई, उल्लू, गधा, पोप आदि कुवाक्य नहीं कहे। क्या ब्राह्मण जाति भर को दुःख नहीं पहुंचाया, क्या समाजी लोग ऐसे उपदेशों द्वारा वैदिकधर्म तथा उस के मानने वालों का अपमान कर २ के दुःख नहीं देते हैं। तब

क्या इसी चौथे नियम से विरुद्ध समाजियों के सब आचरण दुःखदायी नहीं है ॥

२९५ उत्तर—चौथी परीक्षा मनु के (स्वस्य च प्रियमात्मनः) के अनुसार है। स्वामी जी ने मतसम्बन्धी विचार परोपकार दृष्टि से किया था, चतुर डाक्टर प्यारे पुत्र के भी व्रणों को चीर फाड़ कर चङ्गा करने का यत्न करता है। इसी प्रकार मतमात्सर्य अन्धकार को दूर किया है। श्री वेदव्यास जी के उपदेश महाभारत के अनेकों श्लोक मानप्रतिष्ठा के साथ लिखे हैं, बनावटी व्यास को बुरा लिखा है। क्या एक नाम के अनेक मनुष्य होते ही नहीं। ब्राह्मण जाति को घोर निद्रा से जगाया है। पिता उपदेष्टा के कठोर वाक्य भी पुत्रों को लाभकारी होते हैं। आर्योपदेशकों को अपमानकारक शब्दों के बोलने की सख़्त मुमानत है ॥

२९६ प्रश्न—यदि कहो कि हम सत्य कहते हैं, वह पहिले बुरा भी लगे तौ भी परिणाम अच्छा होगा तौ यह तुम्हारी भूल क्या संसार को जान बूझके धोखा देना है। जब युक्ति प्रमाण दोनों से विरुद्ध तुम्हारा कथन है १५ आना मिथ्या सिद्ध हो चुका तब सत्य का दम भरना कूंजड़ी के बेरों के तुल्य क्यों नहीं है ॥

२९६ उत्तर—आप आर्यसमाज का सिद्धान्त १५॥ आने मिथ्या अपने मुख से बताते हैं (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) १० हाथ की हड़ आप ही के मुख का उच्चारण है। रुपये को धर्म भी आप ही मानते हैं तो २० आना मिथ्या क्यों न हो ॥

२९७ प्रश्न—पांचवीं परीक्षा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से स्वा० दयानन्द ने बताई है। सो जब आठ प्रमाण ही किसी शास्त्र में नहीं माने गये तब स्वा० द० का यह लिखना भी मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं है ॥

२९८ प्रश्न—न्यायदर्शन में चार प्रमाण हैं। ऐतिह्यादि चार पूर्वपक्ष में दिखा कर उन का उन्हीं चार में अन्तर्भाव उत्तर पक्ष में कर दिया है। आठ का खण्डन करके चार ही सिद्ध रक्खे हैं। योग सांख्यादि में उपमान को छोड़ के तीन ही प्रमाण माने हैं। तब स्वा० द० का आठ प्रमाण लिखना सब शास्त्रों से विरुद्ध मिथ्या कल्पना क्यों नहीं है ॥

२९७। २९८ उत्तर—न्यायशास्त्र के ८ प्रमाण विवरण में प्रसिद्ध हैं। अन्तर्भाव मानने से ४ होते हैं ॥

२९९ प्रश्न—स्वा० द० के कल्पित मत को सहस्रों बातें

जब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध सिद्ध हो चुकीं तब आठ प्रमाणों से विपरीत अपने मत को कहना मानना (मतङ्गादि का ब्राह्मण होना जैसे प्रत्यक्ष मिथ्या निकला) हठ दुराग्रह तथा पक्षपात नहीं तो क्या है॥

२९९ उत्तर—मतङ्ग को ब्राह्मण बताना आप की सरासर भूल है। देखो उत्तर सं० २६३। २६४ में आप के मुख की अशुद्धि से स्वामी जी का सिद्धान्त अशुद्ध अप्रामाणिक नहीं हो सकता॥

१२—सृष्टि विषय

३०० प्रश्न—तुम्हारे मतानुसार सब से पहिले सृष्टि में कौन पैदा हुआ? यदि कहो कि ब्रह्मा जी से भी पहिले अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा नामक ऋषि उत्पन्न हुए जिनसे ब्रह्माने वेद पढ़ा तो यह बताओ कि अग्नि आदि के मनुष्यदेहधारी होने में क्या प्रमाण है। और इन के सब से पहिले होने में भी क्या प्रमाण है। यदि कोई प्रमाण नहीं दिखा सकते तो स्वा० द० का यह कल्पित विचार मिथ्या क्यों नहीं है॥

३०० उत्तर—हमारे मत में सृष्टि के आदि में बहुत स्त्री पुरुष उत्पन्न हुवे। चारों वेदों के ज्ञाता होने से अनेक

ब्रह्मा नाम हो सकते हैं। इसी से जगदीश्वर को भी (स ब्रह्मा स विष्णुः०) इत्यादि नामों से पुकारा है कि वह ४ वेद का ज्ञाता होने से ब्रह्मा। व्याप्त होने से विष्णु। स्वयं राजा होने से स्वराट्। अग्नि आदि महर्षि भी ब्रह्मा नाम से पुकारे जा सकते हैं। आपके ब्रह्मा का देह-रहित होना भी सिद्ध हो सकता है। परन्तु पुराणोक्त ब्रह्मा के चरित्र तौ ब्रह्मा को भी दोष धरते हैं। ऐसे ब्रह्मा को आप ही अपना पूर्वज बताइये, आर्यों के पूर्वज तौ शुद्ध पवित्र अग्नि जैसे प्रकाशमान वायु जैसे द्रुतगति शील बलिष्ठ थे, बस और क्या प्रमाण दें जब वायु'नाम धारी शरीरवान् ने कुन्ती से भीमसेन जैसे बलिष्ठ शूर उत्पन्न कर दिये, फिर आप वायु आदि को अशरीर कहने की हिम्मत कैसे करते हैं ?

३०१ प्रश्न—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता०। इस श्रुति प्रमाण में आदि देव ब्रह्मा जी का सब से पहिले होना साफ लिखा है। उस को तुम क्यों नहीं मान लेते हो। सत्य बात मानने से हटते, मिथ्या को मानते, और अपने को सत्यग्राही होने का दम भरते हो सो क्या यही धर्म है॥

३०१ उत्तर-(ब्रह्मा देवानां०) इस में ईश्वर का वर्णन है। जैसे वेद में (हिरण्यगर्भः०) इस मन्त्र में लिखा है कि हिरण्यगर्भ सब से पहिले हुवा तौ क्या हिरण्यगर्भ भी कोई देहधारी ब्रह्मा का भाई हुवा था जो सब विश्व का राजा था। सच बात के मानने में उन्हें ही हठ होगा जिनके ब्रह्मा की नाक से वराह निकला हो या जिस ने बछड़े चुराये हों॥

३०२ प्रश्न-जब मनुस्मृतिके आरम्भमें साफ लिखा है कि-

तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।

सब से पहिले ब्रह्माण्ड के बीच ब्रह्मा जी पैदा हुए,इसी से सब लोगोंके पितामह कहाये। इस प्रमाण को भी तुम क्यों नहीं मानते हो॥

३०२ उत्तर-मनुस्मृति के प्रमाण में भी "ब्रह्मा" शब्द है। ब्रह्मा शब्द ईश्वर हिरण्यगर्भ का द्योतक है। विष्णु की नाभि के कमलोद्भव जिस ब्रह्मा का१० वार तौ कमल नाल में को अपने उत्पादक का पता लेने जाना, लौट आना, पता न चलना लिखा, आपके लेखने ११ वीं बार उस ब्रह्मा का ही पता भी न लगाया॥

३०३ प्रश्न-जब बृहदारण्यकोपनिषद्में स्पष्ट लिखा है कि-

त्रीणि ज्योतीᳬं᳭ष्यजायन्त तेभ्यस्तप्तेभ्य-स्त्रयोवेदा अजायन्त, अग्नेर्ऋग्वेद इत्यादि ॥

तीन ज्योति पैदा हुईं, उन तपती हुई तीन ज्योतियों से तीन वेद प्रकट हुए । यहां ज्योति कहने से अग्नि आदि मनुष्य कभी नहीं हो सकते । तब स्वा०द० का इन को मनुष्यदेहधारी लिखना मिथ्या क्यों नहीं है ॥

३०३ उत्तर—आश्चर्य है कि ज्योति शब्द आजाने से शरीर का निषेध वह भी करने लगे जो सब देवों को विग्रहवान् मान कर फूलों की माला डालते हैं । ज्योतिः स्वरूप परमात्मा का तो शरीर दीखे परन्तु वेदप्रकाशक महर्षियोंके विग्रह (देह) होने पर विग्रह=युद्धको त्यारहैं॥

३०४ प्रश्न—बृहदारण्य और मनु आदि के प्रमाणा-अनुसार कि पुरुष रूप में भगवान् स्वयं प्रकट हुए, फिर अपने ही देह से स्त्री पैदा की, वही पत्नी हुई, उन्हीं दोनों से सब संसार हुआ, ऐसा क्यों नहीं मान लिया जाय । शास्त्रोक्त सत्य मानने से क्यों हटते हो ॥

३०४ उत्तर—बृहदारण्यक, मनु में जो वर्णन है उसे यहां लिखते तब हम उत्तर देते परन्तु कुरानी बाबा आदम

हव्वा के समान कथा ईश्वर की बतानी आप की बुद्धि-मानी है । मनु देखो अपना किया भाष्य । तब आप अज्ञानी थे, तौ भाष्य रचने का ढौंग रच कर दुनियां को धोखा क्यों दिया था । तब से अधिक अब आपने कहां तालीम पाई है ॥

१३-पुनर्विवाह नियोग विषय

३०५ प्रश्न—स्त्री के पुनर्विवाह का खण्डन क्या स्वा० द० ने नहीं किया है । यदि किया है तो तुम लोग पुनर्विवाह क्यों कराते और मानते हो। क्या सत्या० समु० ४ में पुनर्विवाह से पातिव्रत धर्म का नष्ट होना आदि कई दोष स्वा० द० ने नहीं दिखाये, तब आम तौर से पुनर्विवाह कराने की चेष्टा स्वा०द० के मन्तव्य और लेख से विरुद्ध क्यों नहीं है ॥

३०५ उत्तर—विधवाविवाह पर स्वामी जी ने दोष दिखाये हैं, अक्षतयोनि कन्या का पुनः संस्कार लिखा है । सो ही हमारा मन्तव्य है ॥

३०६ प्रश्न—अनेक प्रश्नोत्तरों के द्वारा जब सिद्ध हो चुका कि वेद के किसी भी मन्त्र से दूसरा पति करने

की आज्ञा नहीं निकल सकती तब नियोग वा पुनर्विवाह का हल्ला करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ॥

३०६ उत्तर—अनेक वार शास्त्रार्थों प्रश्नोत्तरों और सोती शंकरलाल जी रईस बिजनौर के ५ हज़ार तक के विज्ञापनों से पुनः संस्कार का वेद स्मृति पुराणों के प्रमाणों से सिद्ध होने पर भी अब हल्ला मचाना क्या आप को योग्य है ॥

३०७ प्रश्न—क्या समाजियों में कोई भी उपदेशक अब भी तयार हो सकता है कि मूल वेद के अक्षरार्थ से सभा के बीच में सिद्ध करदे कि ब्राह्मणादि द्विज स्त्री को द्वितीय पति करने की आज्ञा इस मन्त्र में है। यदि कोई तयार हो तो उस के लिये हमारा यही नोटिस है॥

३०७ उत्तर—सोती जी के ५ सहस्र के नोटिस पर भी आपने शास्त्रार्थ न किया तो यह नोटिस क्या बालबुद्धि नहीं है ॥

३०८ प्रश्न—क्या समाजियों को वेद में नियोग के होने की शङ्का अब तक बनी है। यदि बनी है तो निष्पक्ष धर्मात्मा सभ्यजनों की सभा में पेश करके इस

का निर्णय क्यों नहीं कर लेते कि वेद में नियोग तथा पुनर्विवाह की लेश मात्र भी आज्ञा है वा नहीं । हम इस का ब्रा० स० में पूरा २ निर्णय कर चुके हैं ॥

३०८ उत्तर—वेदप्रकाश में ब्राह्मणसर्वस्व का खण्डन प्रबलतया हो चुका है । निर्णय के लिये प्रति समय तयार हैं । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसों का भी यही मत है कि पुनः संस्कार शास्त्रसम्मत है ॥

३०९ प्रश्न—किसी अधर्म से भय रखने वाले समाजी से शपथ ली जाय कि पुनर्विवाह तथा नियोग के प्रचार से क्या पातिव्रत धर्म का खण्डन नहीं होता । यदि होता है तो पातिव्रतधर्मनाशक नियोग तथा पुनर्विवाह का आदेश वेद में क्यों होता ॥

३०९ उत्तर—इसी पुस्तक में १ । २ वार नहीं कई वार शपथ के लिये लिख चुके हो । अब आप ही शपथ खाओ कि २० वर्ष आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर लेख लिखे, उस समय भी कभी आप को यही शङ्का हुई थीं या नहीं । हुईं थीं तो आपने आत्महनन महापाप किया था । उस का प्रायश्चित्त क्या किया ? क्या कोई भी धर्मात्मा सनातनधर्मी शपथपूर्वक कह सकता है कि वेद

स्मृति पुराणों में पत्यन्तरविधान नहीं है ॥

३१० प्रश्न—क्या आ० समाजी लोग लेखों और व्याख्यानोंके द्वारा पातिव्रतधर्म का प्रचार किया करते हैं। क्या यह पातिव्रत वेदशास्त्रोक्तसनातन धर्म नहीं है। क्या पातिव्रत धर्म का लोप हो जाने पर देश का सुधार हो जायगा ॥

३१० उत्तर—सच्चे आर्यसमाजी वही हैं जो लेखों व्याख्यानों द्वारा पातिव्रत धर्म का प्रचार करते हैं और जो विधवा (नाम मात्र की) फेरों की गुनहगार ब्रह्मचर्य धर्म धारण न कर सकें तो छिप २ कर चमारों व म्लेच्छों से धर्म न बिगाड़ें, पुनः संस्कार कर पतिदेव की शरण जावें, उसी पति के व्रत का पालन कर पतिव्रता कहलावें ॥

३११ प्रश्न—पहिले से ही श्रुति स्मृतियों का सुगन्ध वायु फैल जाने से भारतवासी द्विजों के मन में यह संस्कार क्या प्रबलता से ठसाठस नहीं भर गया है कि मेरी माता, पत्नी, बहू, बेटी, भगिनी पतिव्रता हो, किसी अन्य पुरुषको कभी स्वप्न में भी देखनेकी इच्छा न करे॥

३११ उत्तर—हम भी यही कहते हैं कि संसार भर

में सब पतिव्रता होजांय, व्यभिचार न करें १ पति करके उसी के व्रत में मग्न रहैं। अन्य पुरुषों का स्वप्न में भी ध्यान न करैं, न रासलीला भी देखें, जिस में ठाकुरों के साथ राधा का प्रेम हो, न भागवत सुने, जहां गोपीगण पतियों को त्याग आवें ॥

३१२ प्रश्न-क्या कोई भी द्विजपुरुष ऐसा है जो अपनी बहू बेटी भगिनी आदि को अन्य पुरुष से मेल करते वा पुनर्विवाह करते देख जान कर लज्जित वा दुःखी न हो ॥

३१२ उत्तर-विना विवाह किये मेल करना ऐसा ही है जैसे राधाकृष्ण का। ऐसा मेल कोई नहीं देखना पसन्द करता। पुनः संस्कार तो भारत के बड़े २ महा पुरुषों ने किये हैं और कर रहे हैं। हां जिन की बहू बेटी भ्रूणहत्या करती हैं, नीचों के साथ भागती हैं, ऐसे दीर्घ नासिका वालों को लज्जा आनी चाहिये ॥

३१३ प्रश्न--क्या मनुस्मृति में नहीं लिखा है कि-(सकृत्कन्या प्रदीयते) कन्या एक वार दी जाती है। तब पुनर्विवाह में कन्यादान कौन करेगा। अथवा क्या कन्यादान कर्म ही न होगा। और मनु जी ने सकृत् कन्या का देना क्यों कहा, क्या इस से पुनर्विवाह का साफ २ खण्डन नहीं है ॥

३१३ उत्तर—थोड़े दिन हुवे श्रीवंकटेश्वर पत्र में छपा था कि कन्यादान के पीछे सप्तपदी से पूर्व वर मर गया था, तब समस्त विद्वन्मण्डली ने पुनः संस्कार की व्यवस्था दी थी। क्या आप को स्मरण नहीं। कन्यादान कैसे हुवा। कन्यादान से पीछे१ मन्त्र "कोदात०" इत्यादि पढ़ना सब सनातनी पद्धतियों में लिखा है, उस का अर्थ विचार लेते तो यह शङ्का नहीं होती। उस का अर्थ ही स्पष्ट है कि काम ने दिया काम ने लिया काम ही दाता काम ही प्रतिग्रहीता है। बस फिर कन्यादान एक ही देता एक ही लेता है अर्थात् काम ही देता काम ही लेता है। तब कुछ सन्देह नहीं रहता॥

महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान् ने बलदेव जी के प्रति कहा है—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनु मन्यते॥

अर्थात् कन्या का दान पशु के समान किसे भाता है। मुझे पूर्ण आशा है कि आप का भ्रम दूर होगया होगा॥

३१४ प्रश्न—सत्या० समु०४ में स्वा० द० ने लिखा है कि "जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें" क्या यह लेख मिथ्या नहीं है। जो

ब्रह्मचर्य न रख सके उस के लिये नियोग का आदेश क्या किसी प्रमाण से तुम दिखा सकते हो ॥

३१४ उत्तर—अच्छा आप यह चाहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य न रखसके वह भ्रूणहत्या किया करे। ब्रह्मचर्य न रख सकने पर दूसरा क्या उपाय आप बता सकते हैं ?

३१५ प्रश्न—राजा वेन के चलाये नियोग [जिस का मनु जी ने विधान दिखाके खण्डन किया है] को करने वाले व्यासादि क्या जितेन्द्रिय तपस्वी नहीं थे। क्या कोई विषयी जन नियोगके नियम पर चल सकता है। जब ऐसा नहीं हो सकता तो स्वा० द० का लिखना सत्य कैसे ठहरेगा ॥

३१५ उत्तर—राजा वेन मनु से बहुत पीछे हुवे हैं। यह सब जानते हैं। (फिर वेन के चलाये नियोग का खण्डन मनुमें कैसे आकूदा ? इसी प्रश्न में व्यासजी का नियोग आप मान चुके हैं। फिर खण्डन किस मुख से करते हो। अब आप शपथपूर्वक क्या विद्वन्मण्डली में कह सकते हैं कि वदतोव्याघात नहीं हुवा। क्या अब भी लज्जित न होगे। अजितेन्द्रिय पुरुष नियोग

न करै, इस को हम भी मानते हैं परन्तु जितेन्द्रिय करैं, यह सब को मानना चाहिये ॥

३१६ प्रश्न—लाखों विधवाओं का दुःख दिखा २ के जो तुम अन्यों को दुःखित करते हो, उस के बदले विधवाओं में सती तपस्विनी होने, तथा अटल ब्रह्मचारिणी होने का प्रचार करते तो क्या यह धर्मानुकूल वेदानुकूल काम न होता ॥

३१६ उत्तर—लाखों विधवाओं के दुःख से जो आप का पाषाण हृदय आर्द्र हो जाता तो कम से कम ८। ९ वर्ष की कन्याओं का तो विवाह न रचवाते । हम विधवों की गणना कम होने के यत्न करते हैं। पतिव्रत के उपदेश देते हैं। आप बाधक होते हैं ॥

३१७ प्रश्न-क्या तुम कभी सिद्ध कर सकते हो कि विधवाविवाह वा नियोग का उपदेश तथा उद्योग विषय-वासना को बढ़ाने वाला नहीं है। जिस देश में विषयवा-सना बढ़ती है क्या उस देश की उन्नति कभी हो सकती है॥

३१७ उत्तर—हमारा उद्देश्य दयापूर्वक देश सुधार का है, विषय वासना को बढ़ाने के लिये भागवत की कथा कृष्ण के रास विलास हैं। उन्हें बन्द करैं॥

३१८ प्रश्न–स्त्रियों की स्वतन्त्रता, लज्जा का त्याग, आपस की प्रसन्नता से कन्या वर का विवाह, पुनर्विवाह, क्या इत्यादि वेदशास्त्रविरुद्ध बातों का प्रचार तुमने ईसाइयों के अनुकरण से नहीं किया है। क्या ऐसे आचरणों से अंग्रेज़ों की उन्नति मानते हो। क्या यह सब शास्त्रविरुद्ध नहीं है॥

३१८ उत्तर–यदि आपस की प्रसन्नता से विवाह करना ईसाई अंग्रेज़ों का अनुकरण बताते हो तो कृष्ण का रुक्मिणी से और कृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन से विवाह भी ईसाइयों का अनुकरण था ? तब तो बेचारे ईसा का पता भी न था। रुक्मिणी सुभद्रा सावित्री की स्वतन्त्रता से बढ़ कर कुछ हो तो लज्जा का त्याग हो सकता था॥

३१९ प्रश्न–जब अपने २ पूर्वकर्मानुसार सब को सुख दुःख मिलते हैं तो विधवा होनेरूप दुःख को तुम कैसे रोक सकते हो। धर्मशास्त्रों के सिद्धान्त से सिद्ध है कि पति का अपमान, परित्याग, और अन्य पुरुष से व्यभिचार करना ही जन्मान्तर में विधवा होने का कारण है तब पुनर्विवाह करा २ के विधवाओं के शिर पर पाप का बोझा बढ़ाना क्यों नहीं है॥

३१९ उत्तर-पूर्व जन्म के पापवश पुरुषों की स्त्री मरती हैं फिर वह अपने पुनर्विवाह क्यों कर लेते हैं। वह भी ब्रह्मचर्य रख कर रहें ॥

३२० प्रश्न-यदि वास्तव में देशोन्नति चाहते हो तो आनन्दमठ में लिखे अनुसार स्त्री पुरुषों को अटल ब्रह्मचारीरूप सन्तान बनाके देशोन्नति करने का उपदेश क्यों नहीं करते। विषयवासना के प्रचार से क्या कभी किसी जाति वा देश की उन्नति हो सकती है। कदापि नहीं॥

३२० उत्तर-ब्रह्मचर्य रखना तो सर्वोपरि है। परन्तु व्रती बन कर घर में रोटी न खाई। निर्जल व्रती बने रहे और चोरी से बाजार की तेल की पकौड़ी खाईं। उस से तो व्रत न रख दाल रोटी ही घर में बैठके खानी भली हैं॥

१४-तीर्थविषय

३२१ प्रश्न-क्या जल तथा स्थल विशेष तीर्थ नहीं हैं। यदि ऐसा है तो नदियों के संगम पर वेद में उत्कृष्ट ज्ञानप्राप्ति क्यों लिखी। क्या इस से स्मृति पुराणादि के अनुसार त्रिवेणी का तीर्थ होना सिद्ध नहीं है। क्या (नदीनां च सङ्गमे) का कुछ मनमाना अर्थ हो सकता है॥

३२१ उत्तर–नदियों के तट पर सत्योपदेशकों का भ्रमण स्वभावसिद्ध है इस लिये नदी संगमों पर महापुरुषों का भी संगम होता है जैसे घाटों पर आज दिन पहरेदारों गुप्तचरों के रहने का रिवाज है, वहां ज्ञानियों द्वारा ज्ञानप्राप्ति का साधन होता था ॥

३२२ प्रश्न–यदि कहो कि तीर्थयात्रादि से पाप नहीं छूटते तो क्या प्रायश्चित्तों से भी पाप नहीं घटेंगे। ऐसा मानो तो प्रायश्चित्त करना व्यर्थ क्यों नहीं है। तब प्रायश्चित्त क्यों कहे हैं ॥

३२२ उत्तर–धर्मशास्त्रलिखित प्रायश्चित्तों से पाप दूर होते हैं परन्तु मथुरा वृन्दावन जाने से पाप निवृत्ति धर्मशास्त्रों में नहीं लिखी, फिर झूंठा पक्ष क्यों करते हो ॥

३२३ प्रश्न–क्या बाह्याभ्यन्तर शुद्धि के लिये जो २ उपाय शास्त्रकारों ने दिखाये हैं उन २ के करने से बाह्याभ्यन्तर शुद्धि नहीं होती ?। यदि ऐसा हो तो क्या स्नानादि सब व्यर्थ हैं। यदि शुद्धि होती है तो उन्हीं उपायों में तीर्थयात्रा क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३२३ उत्तर–स्नान से मल शुद्धि होती है, जो बाह्य है आभ्यन्तर नहीं होती ॥

३२४ प्रश्न—जब कि मन में हुई ग्लानिका नाम पाप है तो मनकी प्रसन्नता, संतुष्ट होना, ग्लानि मिटना पाप की निवृत्ति क्यों नहीं है। क्या पुण्य पाप कोई स्थूल पदार्थ है कि जिसका छूटना न छूटना प्रत्यक्ष करा सको॥

३२५ प्रश्न—ऐसी दशा में तीर्थ व्रतादि से पाप नहीं छूटते यह कथन मिथ्या क्यों नहीं हुआ। इस के सत्य होने में क्या प्रमाण है। जब कोई प्रमाण नहीं तो हमारे प्रमाण क्यों नहीं मानते हो॥

३२४।३२५ उत्तर—यदि किसी मनोग्लानि की शुद्धि स्नान मात्र से ही शास्त्रविहित हो तो इतने को हम मान सकते हैं किन्तु गङ्गा गङ्गा कहने से ही हज़ारों कोस बैठे सब पाप छूट जाते तो राजायुधिष्ठिर का १ झूठ बोलने का भी पाप क्या न छूट जाता? इसी लिये तुम्हारे प्रमाण हम नहीं मानते॥

३२६ प्रश्न—जब कि मनु आदि धर्मशास्त्रों में साफ़ लिखा है कि—यदि यमराज के साथ तेरा कुछ विवाद नहीं, यदि तू ठीक सत्य बोलता है तो पापनिवृत्ति के लिये गङ्गा जी पर तथा कुरुक्षेत्र जाने की आवश्यकता

नहीं है। क्या इस प्रमाण से सिद्ध नहीं कि गङ्गास्नान से पाप कटते हैं॥

३२: उत्तर—मनु के समय न भगीरथ था, जो गङ्गा को लाया, न कुरु राजा थे, जिन से कुरुक्षेत्र बना, तब यह कैसे हो सकता है कि गङ्गा और कुरुक्षेत्र के जाने की कथा हो। अस्तु। दूसरी बात यह है कि यदि गङ्गा के नाम लेने से पाप छूटते होते तो आप को इस के लिखते २ भी इतना भी पाप न छूटता कि मिथ्या अर्थ कर धोखा तो न दें॥ मनु अ० ८ का यह श्लोक है कि—

यमोवैवस्वतोदेवोयस्तवैष हृदि स्थितः।

तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः॥९२॥

भला इस में "पाप निवृत्ति के लिये" पद कहां है? तीर्थों पर यह झूंठ! यह राजसभा में गवाही का विषय है। जैसे अब काले पानी जाने की सज़ा है ऐसे पहिले मनु के समय गङ्गा पार उतार देना या कुरु देश भेज देना क्षुद्र सज़ा थी। गङ्गा कुरुक्षेत्र के मध्य का देश ही विशेष धर्मदेश कहाता था। अतः राजा ईश्वर का भय दिखा कर कहता है कि यदि तुझे यहां रहना

है तो सच बोलना । इस में पाप दूर करने कहने का लेश भी नहीं है ॥

१५—देवता विषय

३२७ प्रश्न—क्या तुम्हारे मत में परोक्ष देवता कोई नहीं हैं । यदि ऐसा है तो निरुक्त के दैवतकाण्ड में और वेदान्तदर्शन में विग्रहवती देवता कौन दिखाई है । क्या वेद के उदाहरणों से दिखाये हाथ पांव आदि अवयव वाले देव सत्य नहीं हैं ॥

३२७ उत्तर—हमें निरुक्त के देवता स्वीकृत हैं । उनमें कुछ परोक्ष हैं, कुछ प्रत्यक्ष । भूमि पर भी माता पिता आचार्य और राजा आदि देवताओं के हाथ पांव भी होते हैं, वह सत्य हैं ॥

३२८ प्रश्न—स्वा० द० ने शतपथब्राह्मण में लिखे (विद्वांꣳसो हि देवाः) का क्या वेदविरुद्ध अर्थ नहीं किया है । जब शतपथ में वेद के मूल उशिजः पद का अर्थ लिखा है कि उशिज् नाम विद्वान् देवता जन्म से ही होते हैं । जैसे पशुका बच्चा जन्म से ही जल में तर सकता और पक्षी विना सिखाया ही उड़ सकता है वैसे विना पढ़े ही देवता स्वभाव से विद्वान् ही होते

हैं, उन में मूर्ख कोई नहीं होता। इस वेदार्थ को छिपा कर स्वा० द० ने संसार को धोखा क्यों दिया। मन माना कल्पितार्थ क्यों किया॥

३२८ उत्तर-जब देवता जन्म से ही विद्वान् होते हैं तो इन्द्र के गुरु बृहस्पतिजी ने इन्द्र को क्या पढाया। क्या यह आप नहीं जानते कि देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र को विद्या पढ़ाई। अन्य देवता भी पढ़े। क्या आप राजा को भी देवता नहीं मानते। क्या राजा भी जन्म से ही विद्वान् होते हैं। स्वामी दयानन्द ने तो विद्वानों को देवता बताया, आप विद्वानों को राक्षस बताइये। फिर विचार कर देखो कौन सच्चा है॥

३२९ प्रश्न-जिन का दिन छः महीने का और छः मास की रात्रि सब वेदादि में लिखी है वे देवता हैं सो क्या विद्वान् मनुष्यों के भी छः महीने के दिन रात होते हैं॥

३२९ उत्तर-स्वामी जी ने विद्वानों के अतिरिक्त सूर्यादेवता आदि वेदोक्त देवतों को भी माना है। उन का निषेध नहीं किया है। उन सूर्यादि के कारण ध्रुवों पर भी दिन रात ६। ६ मास के होते हैं॥

३३० प्रश्न-छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि देवता न

खाते न पीते हैं किन्तु देखके ही तृप्त हो जाते हैं सो क्या समाजी मत में कोई ऐसे भी विद्वान् हैं जो कुछ भी खाते पीते न हों केवल देख कर ही तृप्त हो जाते हों॥

३३० उत्तर—जब आपके देवता खाते पीते नहीं तौ मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूलं समर्पयामि इत्यादि लीला व्यर्थ क्यों नहीं॥

३३१ प्रश्न-दोपहर से पहले देवतों को भोग देना शतपथ में लिखा, सो क्या विद्वान् मनुष्य रात्रि को नहीं खाते, क्या समाजी मत के विद्वान् जैनी होते हैं॥

३३१ उत्तर—देवयज्ञ दोपहर से पूर्व होता है। वे हुतभुक् वायु आदि देवता हैं। सायंकाल को भी होम लिखा है। विद्वान् भी दोनों समय भोजन करते हैं॥

१६—अवतार विषय

३३२ प्रश्न- यदि तुम लोग ईश्वर का अवतार होना अर्थात् साकार होना नहीं मानते हो तौ स्वा० द० ने आर्याभिविनय पुस्तक में (वायवायाहि०) मन्त्रार्थ करते हुवे सोमरस क्या निराकार को ही पिला दिया है। क्या तुम्हारा निराकार सोमरस पी लेता है॥

३३२ उत्तर—चोरी और सीना ज़ोरी-उलटा चोर

कोतवालको डांटै भूल अपनी, बतावें गुरुजी की। वायवा० इस मन्त्र में (तेषांपाहि) पाठ है और आर्याभिविनय तथा इसी मन्त्र के ऋग्वेदभाष्य में स्वामी जी ने पाहि का अर्थ पालन करो रक्षा करो, किया था। आप से शोधक थे "ल" छोड़ पालन करो का पान करो छपा दिया। भूल आप की हैं॥

३३३ प्रश्न—जब तुम्हारे मत में अवतार नहीं होता तो शुक्ल यजु० अ० ५ कं० १९ के भाष्य में स्वा० द० ने क्या दो हाथों वाले निराकार से ही बहुत सा धन मांगा है। क्या निराकार के दो हाथ हो सकते हैं। अथवा क्या दो हाथों वाला भी निराकार ही कहा माना जायगा। क्या वेद के ऐसे २ साफ़ २ प्रमाण से साकार अवतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है॥

३३३ उत्तर—स्वामी दयानन्द के भाष्यको पढ़ने को समझ चाहिये। समस्त भाष्य भाषा को पढ जाइये कहीं भी हाथ का अर्थ न पावेंगे। संस्कृत भाष्य में भी मनुष्यों के हाथ में बल वीर्य देने की प्रार्थना है। भाषा तो भाष्य की आप ही किया करते थे, भाषा में क्यों नहीं ईश्वर के हाथ अर्थ किया? धोखे से काम नहीं चलता॥

३३४ प्रश्न—जब कि वेद के पुरुषसूक्त में मुख, दो बाहू, दो जंघा, दो पग, आंख, कान, नाभि, शिर, मन इत्यादि ईश्वर के अङ्ग साफ़ २ लिखे हैं सो क्या निराकार में मुखादि हो सकते हैं? जब निराकार में अङ्ग नहीं हो सकते तब उसका साकार अवतार क्यों नहीं मानलेते हो॥

३३४ उत्तर—पुरुष सूक्त में (सहस्रशीर्षा०) इस मन्त्र में विश्व ब्रह्माण्ड का वर्णन है और आगे ब्राह्मण शिर क्षत्रिय भुजा वैश्य जङ्घा शूद्र पग इत्यादि अलंकार हैं वहां २ या १ का नाम नहीं, तुम्हारे मिथ्या प्रलाप से क्या क्षत्रियादि २। २ ही थे, जो दो बाहु बताते हो। वहां आप के दश मत्स्यादि अवतारों में किसी का नाम निशान भी नहीं कहीं। वेद में (भीमउग्र०) वाक्य आने से अपना वर्णन मत समझ बैठना॥

३३५ प्रश्न—क्या (इदं विष्णुर्विचक्रमे०) इस वेदमन्त्र से विष्णु का त्रिविक्रमावतार सिद्ध नहीं है। क्या (वेः पादविहरणे १। ३। ४१) पाणिनि सूत्र से (विचक्रमे) क्रिया में आत्मनेपद नहीं हुआ है। क्या पादविहरण का अर्थ पग चलाना नहीं है। क्या यहां मनमाना कुछ अर्थ कर सकते हो। जब इस मन्त्र से विष्णु भगवान्

का वामनावतार प्रत्यक्ष सिद्ध है तो क्यों नहीं मानते हो॥

३३५ उत्तर-त्रिविक्रम नाम का कोई अवतार नहीं है। यदि वामन अवतार की कथा को चरितावली पर तीन पांव में समस्त संसार को नापने से त्रिविक्रम सिद्ध करो सो भी ठीक नहीं क्योंकि निरुक्त के विरुद्ध है और समस्त मन्त्र का अर्थ भी नहीं लग सक्ता। क्या सनातनी मत में तीनों लोकों में ही (पांशुले) धूलि उड़ती है ? क्या समूढ शब्द के अदृश्य अर्थ को जानने में मुढता आगई है ? विष्णु परमात्मा ३ लोक में व्याप्त अदृश्य है या यज्ञ रूप का अर्थ है। यदि इस मन्त्र में वामनावतार का वर्णन होता तो मेधातिथि ऋषि और इन्द्रदेवता न होते। क्या बलि बांधने से पहिले यह मन्त्र वेदों में नहीं था ? अवश्य था। त्रिविक्रम तो वामन अवतार का कर्म है। अवतार वामन है। क्या सेतु-कर्त्ता शब्द आने से कोई रामचन्द्रावतार की कल्पना कर सकेगा कि श्री राम ने पुल समुद्र का बांधा था। "त्रेधा निदधे पदम्" से भी त्रिविक्रम या वामन अवतार बताना उचित नहीं॥

५३६ प्रश्न-जब सर्वत्र व्यापक रहता हुवा ही अग्नि

नित्य २ असंख्य स्थानों में प्रज्वलित होने रूप से असंख्य अवतार लेता है और उस की व्यापकता में कुछ बाधा नहीं होती और किसी के बन्धन में भी नहीं आता। वैसे ही क्या व्यापक ईश्वर जगत् में प्रकट होना रूप अवतार नहीं ले सकता। क्या सर्वशक्तिमान् होने पर भी उस में स्वयं प्रकट होने की शक्ति नहीं है। क्या वह समाजियों के क़ाबू में है॥

३३६ उत्तर—जब विना जन्म ही सर्वशक्तिमान् होने से सब कुछ प्रलय तक कर सक्ता है तो गर्भयातना क्यों भोगे। प्रभु परमात्मा ने अपने वेद में उपदेश दिया है कि गर्भयातना पाप का फल है। अपने वचन को मिथ्या क्यों करे। क्या वह आप का दबा बसता है कि जो जन्म लेकर अपने वेद के उपदेश को मिथ्या सिद्ध करने लगे। जैसे आप आर्यसमाज में थे तब सनातन धर्म के लेखों को अशुद्ध बताते थे, अब फिर अपने ही लेख के विरुद्ध कुछ का कुछ लिख रहे हैं। ईश्वर अपने वचनों को मत को नित्य नहीं बदलता तभी तो सब का उपास्य है॥

३३७ प्रश्न—क्या तुम कोई ऐसा दृष्टान्त दिखा सकते

हो कि निराकार से साकार होने पर अमुक २ वस्तु में यह दोष आगया। यदि ऐसा दृष्टान्त तुम्हारे समीप नहीं है तो ईश्वर का अवतार न मानना युक्ति से विरुद्ध क्यों नहीं है॥

३३७ उत्तर-सर्वव्यापक एकरस ईश्वर अवतार ले तो एकदेशी हो जाय। निराकार साकार नहीं होता॥

३३८ प्रश्न-(छान्दोग्योपनिषदि-यएष आदित्ये पुरुषो दृश्यते-आप्रणखात्सर्वएव सुवर्णः) जो आदित्य मण्डल में प्रबल उपासकों को पुरुष दीखता है वह नख शिख पर्यन्त सभी सुवर्णमय ज्योतिःस्वरूप है। उस की आंखें शिर के बाल डाढी और मौछें सब सुवर्ण की जैसी चमक वाले हैं। क्या यह कथन निराकार में घट सकता है। जब नहीं घटता तो तुम युक्ति प्रमाण सिद्ध उस के साकाररूप अनेक अवतार होना क्यों नहीं मान लेतेहो॥

३३८ उत्तर अब तक तो मन्दिरों की मूर्त्ति दाढी मूंछों की नहीं हैं। क्या अब दाढी मूंछ भी लगाओगे? लोहड़ी दाढी मूछें लगा कर पतलून बूट टोप भी उढा दो सौ लार्डों को अंग्रेज़ों की मूर्त्ति समझी जावेगी। आपके अवतारों की नहीं॥

३३९ प्रश्न—क्या तुम को अब तक भी यह ज्ञात नहीं हुआ कि ईश्वरावतार के विरोध में कहीं तुम्हारी सब युक्तियां खण्डित हो चुकीं हैं। और प्रमाणों से भी अवतार होना सिद्ध हो चुका। तब निर्विवाद सत्य क्यों नहीं मान लेते हो॥

३३९ उत्तर—चारों वेदों में १ भी प्रमाण आप को राम कृष्ण कल्कि आदि अवतारों का नहीं मिला तभी तो दाढ़ी मूछों की मूर्त्ति सूर्य में बताते हो। वहां किरणको लक्ष्य किया है। योगी के हृदयाकाश में प्रकाश प्रकट होता है॥

३४० प्रश्न—जब तुम ईश्वर का प्रकट होना लिखते कहते मानते हो फिर अवतार शब्द से शत्रुता क्यों करते हो। अवतार पद ने तुम्हारी क्या हानि की है। जब प्रकट होना तथा अवतार होना साकार होना एक ही बात है तो व्यर्थ झगड़ा क्यों करते हो॥

३४० उत्तर—योगी के हृदय में ज्ञानगम्य प्रकटता का आप के अवतारों वाराहादि से कुछ भी मेल नहीं है॥

१७—मूर्त्तिपूजा विषय

३४१ प्रश्न—स्वा० दयानन्द और उन के अनुयायी लोग

जब किसी भी दिशा में मुख करके ईश्वरोपासना करें तब उन से पूछा जाय कि तुम इस ओर क्यों मुख किये हो ? जब वह सब ओर है तो तुम एक ओर मुख कर उस को खण्डित क्यों बनाते हो । यदि कहें कि सब दिशों में एक साथ मुख कर सकना असम्भव है, इस से किसी एक ख़ास दिशा में मुख करना ही पड़ेगा तो इसी प्रकार व्यापक वस्तु की किसी एक वस्तु में ही पूजा उपासना बन सकती है । सर्वत्र पूजा उपासना हो सकना असम्भव है

३४१ उत्तर—घंटा घड़ियाल भी पीतल का, ठाकुर भी उसी धातु के, फिर सर्वव्यापक प्रभु पर घड़ियाल में मूंगरी मार कर बजाते हो, एक को भाग लगा हाथ जोड़ते हो । यह विषम भाव क्यों ?

३४२ प्रश्न—यदि तुम कहो कि हम तो माता, पिता, गुरु और अतिथि आदि चेतन मूर्त्तियों की पूजा उपासना करते मानते हैं और तुम जड़ मूर्त्तियों की पूजा करते हो । तो बताओ कि तुम मातादि की मूर्त्तियों की पूजा देवबुद्धि से करते मानते हो वा मनुष्यबुद्धि से पूजा करते मानते हो ॥

३४२ उत्तर—चेतन माता पिता किन्हीं के मनुष्य किन्हीं के महाविद्वान् होने से देवकोटिके होते हैं ॥

३४३ प्रश्न—तुम लोग कब २ और किस २ रीति से नित्य नित्य वा कभी २ किस नियम से मातादि की पूजा भक्ति करते हो । क्या मातादि की पूजाभक्ति करने का ठेका तुम ने नहीं किया है । क्या कोई समाजी कभी कहीं मातादि की पूजा भक्ति वास्तव में करता है अर्थात् कदापि नहीं ॥

३४३ उत्तर—माता पिता आचार्य अतिथि की सेवा नित्यप्रति कर्त्तव्य है । जो नहीं करते वह पापी हैं, आर्य नहीं । कोई समाजी माता पिता की पूजा भक्तिश्रद्धा से कदापि नहीं करता, यह आप जब आर्यसमाजी थे तब का अनुभव लिखा होगा, आप न करते होंगे ॥

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

सब को श्रद्धाहीन आप क्यों बताते हैं, क्या प्रमाण है ?

३४४ प्रश्न—यदि मातादि की मूर्त्तियों की पूजा तुम देव बुद्धि से करते मानते हो तो वेदोक्त देवता तुम ने मान लिये और देवता न मानने का तुम्हारा मत खण्डित

हुआ। यदि मनुष्यबुद्धि से पूजा मानो तौ पूज्य बुद्धि ही कैसे होगी ?

३४४ उत्तर—वैदिक देवताओं को आर्य लोग सदा से मानते हैं। आप इतने दिनों आर्यसमाजी रहकर भी न जान पाये। सारी रामायण पढ़ कर भी यही बूझने के समान है कि राम राक्षस थे या रावण राक्षस था॥

३४५ प्रश्न—जब कि (मातृदेवोभव। पितृदेवोभव) (माता पृथिव्यामूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः मनु० अ०२) इत्यादि प्रमाणों में माता पितादि की देवभावना से पूजा भक्ति कही है तो क्या तुम वैसी ही ठीक मान लोगे। यदि मान लोगे तौ अन्य में अन्य की भावना से होने वाली पाषाणादि मूर्त्तियों में व्यापक ईश्वरदेव की पूजा के विरोधी कैसे बनोगे॥

३४५ उत्तर—पृथिवी से उत्पत्ति होती है, भूमि से उगे अन्न से पालन होता है, माता से भी उत्पत्ति दूध से पालन होता है। प्रजापति पिता परमेश्वर पालक है। पिता भी भोजन वस्त्रादि देता है। पालक है। अतः समान गुण होने से मूर्त्ति बतायी हैं। यदि आप के मन्दिरों की मूर्त्तियां भी सृष्टि उत्पन्न करें, पालन करें और ईश्वर

जैसे दयादि गुण उन में हों, चेतन हों, सत् हों, आनन्द हों तो ईश्वर की मूर्त्ति भी कोई मानले ॥

३४६ प्रश्न—यदि माता पितादि की पाञ्चभौतिकमूर्त्तियों में तुम्हारी देवभावना नहीं है तो श्रुतिस्मृति दोनों से विरुद्ध तुम्हारा कल्पित मनमाना मिथ्या सिद्धान्त क्यों नहीं ठहरेगा। क्या ऊपर लिखी श्रुति स्मृति में देव-भावना के लिये स्पष्ट आज्ञा नहीं लिखी वा नहीं कही है॥

३४६ उत्तर—पूर्व के प्रश्नों में आ चुका।

३४७ प्रश्न—जब माता पितादि के काम क्रोध लोभादि दोषयुक्त पाञ्चभौतिक शरीरों में [रुधिर मांस हड्डी चर्म वात पित्त कफ मल मूत्रादि का संघट्टमात्र] में अदृष्ट चेतन के होने से पूज्य बुद्धि करते हो तो पाषाणादि सब में व्यापक चेतन ईश्वरदेव के व्याप्त होने से काम क्रोधादि तथा मलमूत्रादि दोषों से रहित पत्थरादि की मूर्त्तियों में पूज्य बुद्धि करना अच्छा क्यों नहीं तथा बुरा क्यों है। क्या इस का ठीक सत्य २ उत्तर दे सकते हो॥

३४७ उत्तर—मूर्त्तियों में काम क्रोध नहीं तो दयादि उत्तम गुण भी नहीं। माता पिता में दयादि गुण भी होते हैं। चेतन होने से उन्हें सुख दुःख का ज्ञान भी

होता है। मूर्त्तियों में नहीं। अतः उन्हें भोजन कराना दीप दिखाना व्यर्थ है॥

३४८ प्रश्न—क्या माता पितादि को पूजते समय तुम्हारे सामने त्वचा हड्डी मांसादि प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं हैं। पादस्पर्शादि में त्वचादि का ही स्पर्श नहीं होता? क्या कहीं चेतन का रूप प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष में चेतन की प्रसन्नता दीखती है और पत्थरादि में प्रत्यक्ष कोई प्रसन्न नहीं होता तो बताओ कि क्या तुम चार्वाक के तुल्य केवल प्रत्यक्षवादी हो। मूर्त्ति में व्यापक जिस ईश्वरदेव की पूजा हम करते हैं वह क्या प्रसन्न न होकर नाराज़ होगा। क्या वह हमारी भावना को नहीं जानता कि यह मेरी ही पूजा भक्ति करता है॥

३४८ उत्तर—ईश्वर के चरण वेद में शूद्रों को लिखा है। अतः शूद्रों को उन्नत करना ही ईश्वर की चरणसेवा है। ब्राह्मणसेवा ईश्वर के शिर की सेवा है। बस आर्य समाज ईश्वर के सब अङ्गों की सेवा करता है क्योंकि चारों वर्णों को ज्ञानोपदेश देकर उन्नति चाहता है॥

३४९ प्रश्न—यदि तुम कहते मानते हो कि मूर्त्तिपूजा

जैन बौद्धों से चली है तो बड़ी भूल है। क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से लेकर वेदादि सभी, शास्त्रों में अब मौजूद है तो क्या यह पूजा तुम्हारे हटाने से हट सकती है॥

३४९ उत्तर-हम तो बौद्ध काल से ही मूर्त्तिपूजा समझते हैं, संस्कृत का सारा साहित्य प्राचीन देखलो कहीं भी सृष्टि के आरम्भ में तो क्या वशिष्ठ जी आदि के आश्रमों में भी कोई ठाकुरद्वारा शिवालय न था, हां अग्निहोत्र स्थान था। सब ऋषि मुनियों के आश्रमों में अग्निशाला थीं। शिवालय न थे॥

३५० प्रश्न-जब शु० यजु० अ० १२।७० के भाष्य में स्वा० द० ने घी, मधु, दुग्धादि से सीता नामक पटेला की पूजा लिखी है सो क्या पटेला लकड़ी जड़ नहीं है। उस पर घी मीठा वा शहत आदि स्वा०द० ने क्यों चढ़वाया है॥

३५० उत्तर-जब कि मकान के लगे चौखट किवाड़ों पर भी तैल लगाकर उन्हें मज़बूत करते हैं और लिखने वाले लड़के पट्टियों पर दूध स्याही लगाते घोटते हैं ऐसे ही किसान लोग हल को फाली मैंडे को भी दूध मीठा जल लगाकर पुष्ट करें यही उपदेश यजुर्वेद में है उस मन्त्र की देवता भी कृषीवलाः हैं। खेती करने का

विधान है। स्वामी जी ने वहां स्वयं लिखा है कि जैसे बीजों पर पुट देने से उत्तम अन्न होता है बीज में अजवायन की पुट देने से आम्रफल अजवायन की गन्ध का हमेशा के लिये आता है। ऐसे ही अन्न में या अन्न बोने के औज़ारों में भी सुगन्धित पदार्थ लगाने से उत्तम अन्न होता है। यही स्वामी दयानन्द जी ने वेद भाष्य में स्पष्ट लिखा है। यह महाविद्या रसायनिक क्रिया भारतवासी भूल गये हैं। इस का पुनः प्रचार अवश्य होना चाहिये। अमेरिका के वैज्ञानिक लोग इस पर विचार करते हैं। वेद में अमरकोश के ही अर्थ नहीं होते, यौगिक भी होते हैं॥

३५१ प्रश्न--वहां भी सीता का अर्थ हल जोतने से हुई लीक है कि जिसे कूंड़ कहते हैं। क्या यह स्वा० द० की प्रत्यक्ष भूल नहीं है। क्या तुम किसी प्रमाण से बता सकते हो कि सीता नाम पटेला का कैसे किस प्रमाणसे है॥

३५१ उत्तर--सीता का अर्थ तो स्वामी जी मन्त्र के भाष्य में स्वयं लिखते हैं? "सायन्ति क्षेत्रस्थलोष्ठान् चयन्ति यया सा सीता" खेत के डलों को फोड़ें जिस से उस काठ की पटड़ी का नाम सीता=गैड़ी होता है।

धान के खेतों के लिये तौ उस में खूंटी भी होती हैं यदि उस में सुगन्ध न लगे तौ जो धान सुगन्ध लगा कर बोया है वह उस की रगड़ से गन्धहीन हो जावे, फिर वासमती चावल सुगन्धयुक्त कैसे बने। पूर्वजों ने धान से ही मूंजी बनाई और मूंजी को वासमती, रायमुनियां, हंसराज आदि बनाया था। यह भारत की उन्नति का समय था। तत्व बातों को समझते थे। पूजा से यह न था कि सब धान ही बाईस पंसेरी होकर "धूपं दीपं नैवेद्यं समर्पयामि दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि" कह कर पुजवा देते हों। इस से पूर्व मन्त्र में शुन का अर्थ वायु और सुन्दर किया है, कुत्ता नहीं॥

३५२ प्रश्न—मूर्त्ति में देवता बुद्धि वा देव भावना करने को तुम अविद्या कहते हो तो क्या तुम पाञ्चभौतिक जड़ शरीरों में आत्मबुद्धि नहीं करते, क्या यह देहात्मवाद रूप स्थूल अविद्या नहीं है, क्या तुम नहीं कहते मानते कि अमुक मनुष्य का जन्म हुआ वा मर गया। सो क्या आत्मा भी जन्मता मरता है, वा स्थूल देह का नाश होता है॥

३५२ उत्तर—आत्मा अमर है। देहवियोग को मृत्यु कहते हैं, कोई भी आत्मा का मृत्यु नहीं कहता। हां जन्म मृत्यु नाम लेकर पुकारे जाते हैं। सो नामरूप उत्पन्न होते और मरते हैं। शङ्का व्यर्थ है॥

३५३ प्रश्न—क्या तुम नहीं कहते मानते कि अमुक मनुष्य बड़ा शुद्ध है। सो क्या महामलिन शरीर कभी शुद्ध हो सकता है। अशुचि शरीर में शुचि बुद्धि करना क्या योगदर्शन में अविद्या का एक उदाहरण नहीं दिया है॥

३५४ प्रश्न-जब तुम्हारा कहना मानना स्वयं अविद्या ग्रस्त है तो अन्यों को अविद्या का मिथ्या दोष लगाने से तुम लोगों को लज्जा संकोच क्यों नहीं होता है॥

३५३।३५४ उत्तर—"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति" इस मनुप्रोक्त शुद्ध शरीर को हम शुद्ध कहते हैं, आप मनु पर हरताल फेरें तब हम से बूझें। मनु जी पर हरताल धर कर इस अविद्या के प्रश्न को करने में लज्जा आप को ही आनी चाहिये॥

३५५ प्रश्न—जब कि वेद के मन्त्रांश को लेकर मूर्ति-

पूजा का अभिप्राय यह है कि असत्प्रपञ्च मात्र संसार एक बाल भर सत्परमात्मा से खाली नहीं है। असत् में सत् को देखने जानने मानने का एक मात्र अवलम्ब मूर्त्तिपूजा है। ऐसे उत्तम आशय को तुम ने क्या अब तक नहीं जान पाया है॥

३५५ उत्तर—तब तो फूल फल चढ़ाना भगवान् पर भगवान् को धरना ही है। ऐसे कपोलकल्पित वाक्य वेदों में आपने कैसे जान पाए?

३५६ प्रश्न—सनातन धर्म का वेदानुकूल सिद्धान्त है कि जिस पत्थरादि पार्थिवांश की मूर्त्तियां बनती हैं वे पत्थरादि ईश्वर देवता नहीं हैं किन्तु उन में से पत्थरादि भावना का छुड़ाना और ईश्वर देवता की भावना का स्थापन करना सिद्धान्त है। पत्थरादि की भावना असत् और ईश्वर देवता की भावना सत् है॥

३५६ उत्तर—रेत में खांड की भावना करके या पैसे पर पारा लगा कर अठन्नी बनाना गवर्नमेंट तो धोखादेही समझती है, सज़ा देती है॥

३५७ प्रश्न—जब वेद में लिखा है कि (स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु) वह परमेश्वर सब प्रजा में ओत और

प्रोत है कि जैसे मट्टी के सब घट पटादि विकारों में मट्टी ओत प्रोत है। मृद्विकारों में मट्टी बुद्धि सद् भावना और विकार बुद्धि असद्भावना है। असद् भावना ही मनुष्य को विषयों में फंसाती है और सद् भावना ईश्वरप्राप्ति का हेतु है। क्या तुम इस उत्तम अबाध्य विचार को मानते हो॥

३५७ उत्तर-वह सर्वत्र ओत प्रोत है, यही वैदिक सिद्धान्त सर्वत्र से पाप हटाता है। और उसे एक मन्दिर के ताले में बन्द मानना पाप सिखाना है। वह सर्वत्र द्रष्टा है। आप को इसे मानना चाहिये॥

३५८ प्रश्न—मट्टी में बूरा की भावना का दृष्टान्त तुम्हारा सत् में असद् भावना का उदाहरण हो सकता है कि जिस को सनातनधर्मी खण्डन करते हैं। इस से ऐसा कुतर्क वेदविरुद्ध क्या नहीं है॥

३५८ उत्तर—मट्टी में बूरा न मानना और गणेश मानना यह कहां की बुद्धिमत्ता है॥

३५९ प्रश्न—यदि बूरा में मट्टी की भावना की जाय तो यह असत् में सद्भावना है क्योंकि ईख गुड़ आदि नाम रूप से मट्टी में से ही शक्कर चीनी बूरा निकला है

और अन्त में फिर भी मट्टी रूप हो जायगा। इस लिये तत्वज्ञान के विचार से बूरा अपनी दशा में भी मट्टी ही है। केवल व्यवहार कोटि में बूरा नाम रूप से परिणत हुई मट्टी खायी जाती है। इसी के अनुसार मूर्त्तियों में ईश्वर देवता की भावना को तुम लोग सद्भावना क्यों नहीं मान लेते हो॥

३५९ उत्तर–बूरा के भाव मट्टी नहीं बिकती, चाहे वह भी मट्टी से ही उत्पन्न हुई है। ऐसे ही ईश्वर के स्थान में मूर्त्ति नहीं हो सकती॥

३६० प्रश्न–क्या केवल निराकार ईश्वर का कोई रूप कभी किसी की कल्पना में आ सकता है कि वह कैसा है। तब तुम्हीं बताओ कि उस का ध्यान कोई कैसे कर सकता है॥

३६० उत्तर–योगियों को ही दीखता है। योगशास्त्र में वर्णन है। जैसे रोग को वैद्य ही जान सकता है(नाड़ी देख कर) "कर बोले कर ही सुने श्रवण सुने नहीं ताहि" हाथ की नाड़ी बोलती है, हाथ ही सुनता है। हां स्वामी दयानन्द जी के सुशिष्य आप होते तो वह योगी आप को भी बता देते। परन्तु उन्हों ने आप

को विश्वासपात्र इस योग्य ही नहीं समझा और २० वर्ष पीछे भेद खुला कि उस योगी को आप के हृदय की बातें ज्ञात थीं ॥

३६१ प्रश्न - जब तक न बताओ कि वह ऐसा है तब तक सर्वज्ञत्वादि गुणों की कल्पना वा सत् चित् आनन्दरूप वा नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव आदि सभी शब्द संदेह कराने वाले और खण्डन के योग्य हैं । यह क्या तुम्हारी समझ में अभी तक नहीं आया । यदि सत् नाम सर्वत्र विद्यमान है तो दिखाओ कहां है ?

३६१ उत्तर—यदि दिवान्ध चिमगादड़ आदि को सूर्य न दीखे, न कोई दिखा सके तो सूर्य के अस्तित्व या प्रकाश होने में सन्देह नहीं हो सकता। बे तार के तार की ख़बरों वाले ६ स्तम्भ दिल्ली के क़िले में लगे हैं, यदि कोई कहे कि मुझे बताओ कि समुद्रों पार की ख़बर इस में कैसे आती हैं ? तो हम कैसे बतावें । वही उस के ज्ञाता जाने । ऐसे ही योगक्रियाओं द्वारा प्राप्य परमात्मा रूप रस गन्ध विवर्जित शाखलिखित को हम नहीं दिखा सकते । नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव परमात्मा के नामों में नास्तिकों को सन्देह होता है, हमें तो वेद प्रमाणों से मान्य हैं ॥

३६२ प्रश्न–यदि वेदोक्तरीति मानलो कि (आत्मैवेद-मग्रआसीत्पुरुषविधः०) यह सब दृश्य जगत उत्पत्ति से पहले आत्मा ही था सो पुरुष नाम मनुष्य के जैसे आकार में था तो वही साकार आगया और साकार ही आत्मा आ सकता है तब उस की मूर्त्ति मानने से वैसे बचोगे ॥

३६२ उत्तर–" प्रकृति स्त्रीरूपा", परमात्मा पुरुषत्वेन निरूपण किया गया है। पुरुष परमात्मा तो सृष्टि से पूर्व भी एक रस व्यापक था, प्रकृति में विकृति होती है। इस बात के लिये " आत्मैवेदमग्रआसीत " इत्यादि वचन प्रमाण हैं। आप साकार की बात नाहक़ घूंसते हैं, जो सब भाष्यकारों के भी प्रतिकूल पड़ती है ॥

३६३ प्रश्न–क्या कोई भी समझदार निराकार को आकार वा मूर्त्तिमान् माने विना बच सकता है। क्या अंग्रेज़ादि सभी काल को विभु व्यापक नहीं मानते हैं और क्या वर्ष मास पक्ष आदि काल के विभाग नाम खण्ड नहीं हैं। और क्या इन संवत्सरादि खण्डों से विभु–व्यापक काल के टुकड़े वास्तव में हो जाते हैं॥

३६३ उत्तर–क्या कोई समझदार अंग्रेज़ भी काल समय को साकार बताता है। यह सब आज की भूल है। घड़ी पल बताने से काल साकार नहीं हो सक्ता॥

३६४ प्रश्न–यदि काल के टुकड़े–खण्ड हो जाते हैं तो फिर उसे तुम विभु क्यों मानते हो। क्या नैयायिकों ने काल को विभु नहीं माना है। और यदि काल के खण्ड नहीं होते तो व्यापक ईश्वर अवतार लेने वा भिन्न २ मूर्त्तियों में पूजा जाने पर खण्डित कैसे हो जायगा॥

३६४ उत्तर–काल समस्त निराकार है तो उसके भाग भी घड़ी पल आदि सब निराकार ही होते हैं। निराकार ईश्वर के भाग भी आप कल्पना करें तो वह भी मूर्त्तिमान् नहीं होंगे॥

३६५ प्रश्न–क्या व्यापक काल में संवत्सरादि खण्ड कल्पना [जो वेदोक्त है] हुवे विना संसार का कोई काम व्यापक निराकार काल से कदापि चल सकता है। यदि नहीं चल सकता तो व्यापक निराकार ईश्वर की पूजा उपासना कैसे हो सकेगी॥

३६५ उत्तर–निराकार ईश्वर की उपासना भी हृदया

काश मात्र में योगी करते हैं जो शास्त्रसम्मत है। इसी से काम चलता है, इसी का वेद में विधान है ॥

३६६ प्रश्न—अखण्ड विभु काल के संवत्सरादि खण्ड हो जाने पर दिन रात के विभाग जानने के लिये क्या अंग्रेजों ने सहस्रों प्रकार की काल की मूर्त्तियां घड़ीरूप नहीं बना डाली हैं। क्या उन घड़ीरूप मूर्त्तियों से काल का सच्चा ज्ञान नहीं होता है कि अब इतने बजे हैं ॥

३६६ उत्तर—परमात्मा ने तौ सूर्य चन्द्रादि समय चक्र और अपनी महिमादर्शक यन्त्र बनाये हैं उनको देखने से ही ईश्वर का ज्ञान होता है कि वह कर्त्ता महाशक्तिशाली है जिस ने सूर्यादि बनाये हैं। यह भी ज्ञात होता है। मूर्त्तियों से उस की महिमा का महत्व नहीं दीखता ॥

३६७ प्रश्न—शब्दरूप गुण वा अकारादि वर्ण अनन्त आकाश में व्यापक हैं। क्या शब्दों वा वर्णों का वास्तव में कोई रूप वा रङ्ग है अथवा कुछ लम्बाई चौड़ाई है। जब कि शब्दों वा वर्णों का कोई आकार नहीं तो व्यापक आकाश में शब्द भी निराकार व्यापक हुआ। तो क्या निराकार शब्द को जानने के लिये वर्ण पद

वाक्यादि की कल्पना की नहीं गई है। क्या इस कल्पना के विना कोई भी पुरुष व्यापक शब्द को किसी भी प्रकार से जान सकता है॥

३६७ उत्तर—शब्द वर्ण की कल्पना है। ऐसे ही ईश्वर प्राप्त्यर्थ प्राणायामादि विधान मुनीश्वरों ने बताये हैं॥

३६८ प्रश्न—क्या वर्ण पद वाक्यादि की कल्पना से शब्द की वास्तविक व्यापकता नष्ट हो गयी है वा उस में कुछ बाधा पड़ गयी है। जब वर्णादि की कल्पना होजाने पर भी शब्द अपने स्वरूप में वैसा ही शुद्ध व्यापक निराकार बना है तो अवतारादि की साकार कल्पना क्या परमात्मा के व्यापक स्वरूप को बिगाड़ सकती है॥

३६८ उत्तर—कोई भी वर्ण समाम्नाय वाला दावा नहीं करता कि समस्त शब्द इन अक्षरों में ही आगया है। किन्तु अवतारवादी कहते हैं "अन्ये चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" षोडश कला पूर्ण अवतार बताकर शेष संसार ब्रह्म से ख़ाली रहगया। नहीं अक्षरों में वर्ण भरे हैं, ऐसा होता तो अक्षरों से शब्द निकलता, जैसे ढोलक से॥

३६९ प्रश्न—यदि व्यापक एकात्मक शब्द ब्रह्म में

वर्ण पद वाक्यादि की कल्पना न होती तो क्या कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार पण्डित विद्वान् हो सक्ता था वा पढ़ पढ़ाके कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सक्ता था॥

३६९ उत्तर—यदि परमेश्वर के रचे सूर्यादि न होते तौ ईश्वरसिद्धि भी नास्तिकों के सामने कठिन होती।

३७० प्रश्न—इसी प्रकार एक अखण्ड निराकार व्यापक ब्रह्म के अवतार न होते तौ क्या उस को कोई कुछ जान सकता था कि वह कौन कैसा और कहां है॥

३७० उत्तर -मिथ्यावाद में याद नहीं रहता तभी तौ इस प्रश्न में आप स्वयं निराकार अखण्ड ब्रह्म कहने लगे। आपने इसी पोथी के प्रश्न ११ में लिखा है ईश्वर के निराकार होने में कुछ भी प्रमाण नहीं है। यह परस्परविरुद्ध बातें क्यों?

३७१ प्रश्न—फिर वर्ण पद और वाक्यादि रूप में कल्पित शब्द ब्रह्म को सुगमता से जानने के लिये अकारादि वर्णों की आकृति कागज स्याही में बनायी कि जो अकारादि रूप में कल्पित शब्द ब्रह्म की मूर्त्तियां वा प्रतिमा हैं जिन से वेदादि शास्त्रों की सैंकड़ों पुस्तक मूर्त्तिरूप बन गयीं हैं। क्या तुम लोग इन पुस्तक रूप मूर्त्तियों को नहीं मानते हो॥

३७१ उत्तर–शब्द को आप निराकार बताते हैं सो नहीं, यदि निराकार होता तौ फ़ोनोग्राफ़ में नहीं भरा जाता। परमात्मा शब्द से भी अत्यन्त सूक्ष्म है। विषम दृष्टान्त है॥

३७२ प्रश्न–जिन अकारादि वर्णों की बनाई हुई आकृतियों को तुम स्वयं कागजों पर लिखते वा छापते छपवाते हो, क्या तुम उन को अक्षर नहीं कहते मानते हो। सो क्या तुम्हारी अकल मारी गयी है, शोचो तो वे अक्षर कब हैं किन्तु क्षर हैं। जिस का नाश न हो वह अक्षर कहता है। इन लिखे हुए वर्णों का सब कोई नाश कर सकता है तब ये अक्षर कैसे हुए॥

३७२ उत्तर–अक्षर नाम काग़ज़ पर लिखे काले पीले सब ऐसे ही हैं जैसे किसी मनुष्य का नाम ब्रह्म हो। वास्तव में वह ब्रह्म नहीं होता। आपने तौ अपने पुत्र का नाम ही ब्रह्म धर लिया है॥

३७३ प्रश्न–क्या तुम ने ये पुस्तक रूप वेदादि शास्त्रों की मूर्त्तियां तथा अकारादि वर्णों की सहस्त्रों मूर्त्तियां कल्पित की हुईं अपने प्रयोजनार्थ नहीं मानी हुई हैं।

जब असंख्य मूर्त्तियों को अपके प्रयोजनार्थ तुम मानते हो और इन मूर्त्तियों को माने विना व्यापक शब्द ब्रह्म को कदापि नहीं जान सकते तो एक व्यापक पर ब्रह्म के अवतारों की मूर्त्तियों को न मानने का झगड़ा क्यों उठाते हो ॥

३७३ उत्तर विना अक्षरों के देखे गट्टूलाल जी जैसे जन्मान्ध भी बड़े पण्डित होगये हैं । यदि मूर्त्तियां ब्रह्म प्राप्ति करादें तौ काशी वृन्दावन गली २ में मूर्त्तियां हैं वहां नास्तिक क्यों रहें । न पुस्तकों से ज्ञान होता है ज्ञान तौ गुरु आचार्य द्वारा होता है, सोही पूज्य हैं ॥

३७५ प्रश्न–क्या तुम्हारा यही प्रयोजन तौ नहीं है कि काल की घड़ी आदि रूप वा शब्द की पुस्तकादि रूप मूर्त्तियों के माने विना हमारा संसारी काम नहीं चलता इस से मानने ही पड़ती हैं । परमेश्वर से हमें क्या लेना है, क्या हमें कुछ दे देगा । जैसा करेंगे वैसा भोगेंगे । इस लिये निराकार २ कह लेते हैं कि जिस से कोई नास्तिक न कहे न माने । यदि ऐसा विचार है तौ क्या तुम पक्के नास्तिक सिद्ध नहीं होते हो ॥

३७४ उत्तर–क्या आप का मूर्त्तियों से यही प्रयोजन

है कि उन्हें मन्दिर में बन्द करके लोग सुलफा उड़ावें, मिथ्याभाषण करें, वेदों को न मानें, कोरे नास्तिक रहें परन्तु लोग दिखावे को मूर्त्तियों के आगे शिर झुका लिया। यदि सर्वत्र परमात्मा को मानेंगे तो सब जगह से पाप छोड़ना पड़ेगा ॥

३७५ प्रश्न-(जीविकार्थे चापण्ये । अ० ५ । ३ । ९९) व्याकरण अष्टाध्यायी के इस सूत्र से मूर्त्तिपूजा सिद्ध है उसे तुम क्यों नहीं मानते हो ॥

३७६ प्रश्न-उक्त सूत्र का अर्थ यह है कि जो जीविका के लिये तो हों पर बेंची न जायं, ऐसी प्रतिमा वा तस्वीर अर्थ में हुवे कन् प्रत्यय का लुक् हो जावे। उदाहरण-शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः। वासुदेवस्य प्रतिकृतिः वासुदेवः। रामस्य प्रतिकृतिः-रामः। कृष्णस्य प्रतिकृतिः कृष्णः। तस्य प्रतिकृतिरूपस्य शिवस्यालयः शिवालयः। अर्थात् शिव की प्रतिमा का नाम भी शिव ही है। उस प्रतिमा रूप शिव का मन्दिर शिवालय कहाता है। ऐसे ही रामालय कृष्णालय भी सिद्ध हैं। क्या इस व्याकरणसिद्ध बात को भी तुम लोग न मानोगे ॥

३७५-३७६ उत्तर-वैश्यों के यहां जो बाट होते हैं

वह जीविकार्थ तो हैं बेचने के नहीं होते। इसीलिये धड़ा सेर अधसेरा पौसेरा कहाते हैं, सेर भर धड़ी भर नहीं कहाते। आपने "शिवस्य प्रतिकृतिः शिव" इत्यादि लिखे प्रयोग बताये हैं। अष्टाध्यायी में प्रयोग नहीं हैं॥

३७७ प्रश्न—जैसे शिव की प्रतिमा का नाम शिव, विष्णु की प्रतिमा का नाम विष्णु होता है वैसे ही अकारादि वर्णों की कल्पित आकृति जो कागज़ादि में लिखी छापी जाती हैं, वे अक्षरों की प्रतिमा होने से अक्षर कहाती हैं। यदि निष्पक्ष बुद्धि से ध्यान दोगे तो क्या अब भी मूर्त्तिपूजा के रहस्य को नहीं समझोगे॥

३७७ उत्तर-इस का उत्तर ३७२ में हो चुका है॥

३७८ प्रश्न—जयपुरादि नगरों में जो २ प्रतिमा कारीगरों ने जीविकार्थ बना २ कर बेचने के लिये रक्खी हैं वे पाणिनिसूत्रानुसार अपण्य नहीं किन्तु पण्य हैं। इस लिये शिवादि की उस २ प्रतिमा का नाम बिकने समय तक शिवकः। रामकः। कृष्णकः। रहेगा और जब किसी मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा हो जायगी तब पुजारियों की जीविकार्थ होने और बेची न जाने से उन का नाम शिव, राम, कृष्ण आदि होगा॥

३७८ उत्तर-मेजिक लॅंटर्न, बाइसकोप में मूर्त्तियां दिखा कर जीविका करते हैं। पहिले भी सन्दूकों में, कपड़ों पर चित्र खींच कर दिखाकर जीविका करते थे। तब जीविकार्थे का अर्थ यही क्यों नहीं करते । यदि पाणिनि मुनि इन मूर्त्तियों के विषय में लिखते तो "पूजार्थे चापण्ये" सूत्र लिखते । जयपुर से जो मूर्त्तियां आती हैं उन में भी रामकृष्णादि महापुरुषों की मूर्त्तियां होती हैं, विष्णु की नहीं ॥

३७९ प्रश्न-इसी लिये (अ० ५ । ३ । ९९) सूत्र पर महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने कहा है कि (यास्तु सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति) जो मूर्त्तियां सम्प्रति पूजा के लिये मन्दिरों में स्थापित की जाती हैं वे जीविकार्थे हैं पर बेंची नहीं जातीं, उन में कन् प्रत्यय का लुक् हो जावेगा । क्या इस प्रमाण से मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं है॥

३७९ उत्तर-महापुरुषों की मूर्त्तिपूजा सोभी सम्प्रति पूजा=प्रतिष्ठादि से तात्पर्य हो सकता है । महाभाष्य कार के ही यह वाक्य मानो तो भी सम्प्रति शब्द से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में पूजा नहीं होती थी, उसी समय पूजा सत्कार होने लगा था । जैसे आज

दिन आर्ज की मूर्त्ति, लाखों की मूर्त्ति बनती हैं। मन्दिर में रखना आप अपनी ओर से घुसेड़ते हैं। महाभाष्य में मन्दिर का नाम भी नहीं ॥

३८० प्रश्न-(देवलकादीनां जीविकार्था देवप्रतिकृतय उच्यन्ते) पुजारी आदि की जीविका के लिये स्थापित शिवादि देवों को मूर्त्तियां इस सूत्र में दिखायी हैं। इस काशिका के लेख से भी क्या मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं है ॥

३८० उत्तर-काशिकाकार स्पष्ट कहते हैं कि पुजारियों ने जीविका के लिये देवतों की मूर्त्तियां बनाई हैं। अर्थात् यह परमात्मज्ञान के लिये नहीं हैं। देव=राजादि को कहते हैं ॥

३८१ प्रश्न-(शु० यजु० अ० १ । २०) पर शतपथ में प्राण प्रतिष्ठा का विचार भी स्पष्ट लिखा है जिस में मन्त्र विनियोग साफ़ २ है । क्या मूर्त्तिपूजा के लिये इत्यादि प्रमाण तथा युक्तियां कम हैं। क्या इन से सम्यक् सिद्ध नहीं है ॥

३८२ प्रश्न-तुम लोग जो (न तस्य प्रतिमा अस्ति) इस वेद मन्त्र से सिद्ध करना चाहते हो कि उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है सो क्या अब तक नहीं जान पाया

कि सनातनधर्मी लोग इस की व्यवस्था क्या करते हैं सो क्या सर्वथा ठीक सत्य नहीं है ॥

३८१।३८२ उत्तर—यदि शतपथ का पाठ लिखते तब उत्तर होता, जब यजुः अ० ४० में स्पष्ट ही न तस्य प्रतिमा० कह दिया कि उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है जिस का महायश है। तब आप नाहक ईश्वर की प्रतिमा बताने लगे हैं। इस का अर्थ स्पष्ट है। सनातनी क्या अर्थ करते हैं सो बताओ ॥

३८३ प्रश्न—देखो तुम कहते मानते हो कि स्वा० दयानन्द के शरीर की बनावट ऐसी ही थी कि जैसा यह फोटो है। तब यह बताओ कि फोटो पांचभौतिक शरीर में जो चेतन शक्ति थी, उस का यह फोटो है ॥

३८३ उत्तर—चेतन शक्ति का फ़ोटो नहीं है।

३८४ प्रश्न—जब कि वेद मन्त्र कहता है कि—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥

यह चेतन जीव न स्त्री है न पुरुष है और न नपुंसक है किन्तु जैसी २ बनावट के शरीर को धारण

करता है उस के सम्बन्ध से वैसा २ कहा जाता है। तो सिद्ध हुआ कि चेतन जीव का फोटो नहीं हो सकता। तब तुम क्यों कहते मानते हो कि यह फोटो स्वा० दयानन्द का है ॥

३८४ उत्तर–जीव न स्त्री है न पुरुष न नपुंसक, ठीक है। कोई २ महात्मा सनातनी तो इसे भी ईश्वर के अर्थ में ही मानते हैं। जीव के में नहीं ॥

३८५ प्रश्न–जब कहते मानते हो कि स्वा० द० स्वर्ग को गये, उन के भौतिक शरीर को जलाया गया तो सिद्ध है कि दयानन्द नाम जीव का था, तब दयानन्द नामक जीव का फोटो क्यों कहते हो ॥

३८५ उत्तर–दयानन्द नाम जीव का नहीं। अनेक जन्मों में अनेक नाम होते हैं। जीव का फ़ोटो नहीं होता ॥

३८६ प्रश्न–(तस्य दयानन्दस्येयं प्रतिमा (फोटो) नास्ति) ऐसा क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३८६ उत्तर–जब "यस्य नाम महद् यशः" पाठ भी है तब ईश्वर के स्थान में दयानन्द को आर्य तो नहीं मानते परन्तु हां आप के मत में ईश्वर के अवतार होते हैं, आप ऐसी ही गुरुभक्ति कीजिये ॥

३८७ प्रश्न—यदि कहो कि वास्तव में चेतन शक्ति का फोटो नहीं होता तो भी वह जीव जिस २ शरीर में आता है उस २ में वैसा २ दीखने से वही चेतन जीव (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि०) वेद प्रमाणानुसार स्त्री पुरुष आदि के उस २ नाम से कहा जाता है। इस से उस की प्रतिमा भी कह सकते हैं। तो वैसे ही अवतार के दिव्य शरीरों में प्रकट हुए परमात्मा की प्रतिमा भी क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३८७ उत्तर—जीव अणु है वह शरीर में समाता है। ईश्वर व्यापक विभु है, वह कहीं एक मूर्त्ति में नहीं समा सकता है ॥

३८८ प्रश्न—जब कि वेद के (सहस्रस्य प्रतिमासि) इत्यादि मन्त्रों में उस की प्रतिमा का होना स्वीकार किया गया तो ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि निराकार की प्रतिमा का निषेध है और साकार अवतारों की प्रतिमाके होने का विधान है। तो ठीक २ दोनों पक्ष बन जाते हैं ॥

३८८ उत्तर—साध्यसमहेत्वाभास दोष है। निराकार की प्रतिमा नहीं, यह तो आप भी स्वीकार गये। अब

अवतारसिद्धि भी साध्य है तब उसकी प्रतिमा को ईश्वरप्रतिमा बतलाना भारी भूल है ॥

३८९ प्रश्न—अत्यन्त रूपवती स्त्रियों की तस्वीरों को तुम जैसे कामोद्बोधक मानते हुए कमरों में खर्च कर २ लगाते हो, वैसे अवतारादि की तस्वीरों को भी क्या धर्म तथा ज्ञानादि की सहायक मानते और उन के दर्शन से धर्मज्ञान की उन्नति करते हो ॥

३८९ उत्तर—हम तो स्त्रियों की मूर्त्ति रखना अच्छा नहीं समझते । हां महात्मापुरुषों की मूर्त्ति रखनी चाहियें, उन्हें ईश्वर न बताओ ॥

३९० प्रश्न—जैसे काम के प्रसुप्त होने से बालक को मनोहारिणी तस्वीर से कामोद्बोध नहीं होता । वैसे ईश्वर भक्ति के न होने से तुम को मन्दिरादि में देव-प्रतिमा के दर्शन से कुछ लाभ नहीं होता । ऐसा क्यों नहीं मान लेते हो । इति शम् ॥

३९० उत्तर—शरीरधारी स्त्रियों की मूर्त्तियों से निराकार ईश्वर की मूर्त्ति सिद्ध करने से पाण्डित्य की पोल खुलेगी । क्या आप बुद्धि की इति श्री कर बैठे हैं ?

ढुण्ढनलाल स्वामी

१ । ९ । १४

सन्ध्या

पद २ के सरल संक्षिप्त सुगम अर्थों सहित यह सन्ध्या यद्यपि १० सहस्र तो आर्यप्रतिनिधिसभा ने प्रथम वार प्रकाशित की, और फिर १०।१० सहस्र करके १२ वर्ष में १ लाख २० सहस्र फिर मैंने स्वयं प्रकाशित की। इस वार इस का मूल्य धर्मार्थ बांटने में सुगमता हो, इस लिये नयी छापकर केवल ॥।) की १०० करदी गई है। डाकव्यय १०० पर ।≈) लगता है। इस लिये जो आर्य वा आर्यसमाजें उत्सवों वा मेलों पर बांटने की इच्छा से मंगावें उन्हें ३) की ४०० रेल में मंगावें तो ५०० मीलतक ॥) में पहुंच जावेंगी॥ २५० मील तक ।) में ॥

पता—तु० रा० स्वामी स्वामियन्त्रालय—मेरठ

भास्करप्रकाश

तृतीयवार छपा

यह वही ग्रन्थ है जिस में पं० ज्वालाप्रसाद जी के फैलाये अन्धकार को दूर किया गया है । सत्यार्थप्रकाश पर उठाये हुवे शङ्कासमूह को समूल उखाड़ा है । विशुद्ध वैदिक धर्म की रक्षा करने के लिये बहुत उपयोगी है । मूल्य १।) सजिल्द १॥)

नागरी रीडर नं० ४ मूल्य =)

(सत्यार्थ सार)

इस पुस्तक में बड़े रोचक रूप में ६० पृष्ठों पर सत्यार्थप्रकाश के ११ समुल्लासों का सार लिखा गया है । ३४ पृष्ठों पर स्त्री पुरुषों के पत्र लिखने का प्रकार धर्मशिक्षा आदि ३६ विषय हैं । यवन ज्योतिष और राधास्वामी मत की समालोचना अपूर्व है ॥

सत्यार्थप्रकाश का सार

देखना हो, बालकों को शिक्षा देनी हो, धार्मिक बनाना हो तो मंगाकर देखिये। चारों रीडर सजिल्द ।-) में मिलेंगी॥

नागरी पढ़ने वालों को धर्म युक्त शिक्षा देने के लिये यह चारों रीडर बड़ी ही उत्तम हैं। बहुत सी पाठशालाओं में यह पुस्तक पढ़ाई जाती हैं॥

प्रथम रीडर मूल्य)॥ दूसरी रीडर -) तीसरी रीडर -)॥ चौथी रीडर=)

वाल्मीकीय रामायण-सार

यह रामायण कब बनी, रामचन्द्र जी की आयु का विचार इत्यादि बात भूमिका में दिखा कर समस्त रामचरित्र श्लोकों में अर्थ सहित है। तो भी मूल्य -) एक आना

छुट्टनलाल स्वामी स्वामी पुस्तकालय-मेरठ